बी० ए० (प्रतिष्ठा) तृतीय खण्ड

समाजशास्त्र–पंचम पत्र

विषय सूची

क्रम सं०			इकाई	पृष्ठ
1.	ग्रामीण समाजशास्त्र : उत्पत्ति एवं विकास	---	1	2
2.	ग्रामीण समाजशास्त्र : परिभाषा एवं अध्ययन क्षेत्र	---	2	9
3.	ग्रामीण समुदाय	---	3	19
4.	ग्रामीण एवं नगरीय जीवन में अन्तर	---	4	25
5.	भारतीय जाति प्रथा : अवधारणा एवं जाति प्रथा में परिवर्त्तन	---	5	32
6.	प्रभु जाति	---	6	39
7.	संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण	---	7	45
8.	ग्रामीण शक्ति संरचना : अवधारणा एवं आधार	---	8	55
9.	ग्रामीण शक्ति संरचना में हाल के परिवर्त्तन	---	9	61
10.	ग्रामीण नेतृत्व : वर्त्तमान स्थिति में	---	10	67
11.	भूमि संबंध : अर्थ और परिवर्त्तन	---	11	73
12.	भूमि सुधार के उपाय : राजकीय प्रयास	---	12	79
13.	भारतीय ग्रामीण परिवार : विशेषताएँ और कार्य	---	15	86
14.	भारतीय ग्रामीण परिवार : दोष एवं परिवर्त्तन	---	16	94
15.	पंचायती राज व्यवस्था (बिहार के संदर्भ में)	---	17	105
16.	ग्रामीण भारत में नियोजित परिवर्त्तन	---	18	123
17.	समेकित ग्रामीण विकास योजना	---	19	131
18.	सामुदायिक विकास कार्यक्रम	---	20	140
19.	ग्रामीण सामाजिक परिवर्त्तन के अवरोध	---	21	147

ग्रामीण समाजशास्त्र : उत्पत्ति एवं विकास

पाठ-संरचना

1.0 उद्देश्य
1.1 परिचय
1.2 ग्रामीण समाज की उत्पत्ति एवं विकास की अवधारणा
  1.2.1 ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति
  1.2.2 ग्रामीण समाजशास्त्र का विकास
  1.2.3 निष्कर्ष
1.3 सारांश
1.4 पाठ में पारिभाषिक शब्द
1.5 अभ्यास का प्रश्न
  1.5.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न
  1.5.2 लघुउत्तरीय प्रश्न
  1.5.3 दीर्घउत्तरीय प्रश्न
1.6 प्रस्तावित पाठ

1.0 उद्देश्य

इस पाठ में हमारा उद्देश्य ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास की जानकारी प्राप्त करना है। साथ ही हम अमेरिका में तथा भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र के विकास में विद्वानों ` योगदान के बारे में जानकारी देंगे ।

1.1 परिचय

विभिन्न सामाजिक विद्वानों में समाजशास्त्र की स्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हुए भी इसका इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है । मानव व्यवहार जटिलताओं एंवं विभिन्नताओं से परिपूर्ण है । मनुष्य के व्यवहार एवं सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के लिए समाजशास्त्र में भी अनेक विशिष्ट शाखाओं का उदय हुआ है । औद्योगिक समाजशास्त्र, धर्म का समाजशास्त्र, ज्ञान का समाजशास्त्र शिक्षा का समाजशास्त्र, चिकित्सा का समाजशास्त्र, कानून का समाजशास्त्र, सामाजिक मनोविज्ञान, नगरीय समाजशास्त्र, राजनीतिक समाजशास्त्र, पारिवारिक समाजशस्त्र आदि समाजशास्त्र की विभिन्न शाखाएँ हैं जो

मानव जीवन के विशिष्ट सामाजिक पहलुओं का अध्ययन करती हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र भी समाजशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा है जो मानव के ग्रामीण जीवन का सर्वांगीण अध्ययन करती है । उद्योगीकरण एवं नगरीकरण का प्रभाव ग्रामीण जीवन पर पड़ा, जिसके फलस्वरूप ग्रामीण समुदाय में अनेक नवीन समस्याएँ उत्पन्न होने लगीं । इन समस्याओं की ओर अनेक विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ । इन समस्याओं के अध्ययन ने समाजशास्त्र की एक शाखा के रूप में ग्रामीण समाजशास्त्र के विकास की पृष्ठभूमि तैयार की।

1.2 ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास

1.2.1 ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति

ग्रामीण समाजशास्त्र का विधिवत् वैज्ञानिक अध्ययन पाश्चात्य देशों में प्रारम्भ उस समय हुआ जबकि आगस्ट काम्ट, हरबर्ट स्पेन्सर तथा कुछ अमेरिका के समाजशास्त्रियों ने समाजशास्त्र को एक प्रथम सामाजिक अध्ययन के रूप में स्वीकार कर लिया । जब समाजशास्त्र का महत्व यूरोप से हटकर संयुक्त राज्य अमेरिका में समझा जाने लगा तो वहाँ के कुछ समाजशास्त्रियों ने 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक चरणों में वहाँ की ग्रामीण समस्याओं के वैज्ञानिक अध्ययन की बात सोची। उसी समय से अमेरिका की ग्रामीण समस्याओं की प्रकृति को वहाँ की नगरीय समस्याओं से भिन्न परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया जाने लगा । अतः बदलते हुए ग्रामीण परिवेश में अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक रूप में ग्रामीण समाजशास्त्र का उदय हुआ । 18वीं शताब्दी का अन्तिम काल और 19वीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल अमेरिकन समाज के लिए शोषण का युग था, जिसमें अनेक प्रकार की कई ग्रामीण समस्याओं का जन्म हुआ था । घोर संकट की इस घड़ी में शोषण की चक्की में पिसते हुए ग्रामीण समाज के लोग अपने-अपने गाँवों को छोड़कर नगर की ओर पलायित हो रहे थे । भूस्वामियों के अत्याचार और अनाजों की कमी के कारण पीड़ित ग्रामीण नगर की ओर तेजी से बढ़ रहे थे । अमेरिकन समाज के लिए यह युग घोर पतन का युग था। प्रसिद्ध समाजशास्त्री सिम्स (Sims) ने Elements of Rural Sociology नामक पुस्तक में लिखा कि सम्पूर्ण काल ग्रामीण सामाजिक पतन का काल था । अतः इन नवीन ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के निदान के लिए सर्वप्रथम पादरियों (Clergymen) ने काम प्रारंभ किया । इन पादरियों के प्रयास के बाद कई वैज्ञानिकों ने इस पर कार्य करना आरम्भ कर दिया और जिसने ग्रामीण समाजशास्त्र को जन्म दिया । सिम्स ने लिखा है कि ग्रामीण समाजशास्त्र जन्म भी उसी समय हुआ जब ग्रामीण जीवन असंतुलित हो गया । ग्रामीण जीवन के इस असंतुलन की ओर कई विद्वानों, शोधकर्त्ताओं और समाजशास्त्रियों का ध्यान गया । इस तरह ग्रामीण समाज का अध्ययन आरम्भ हो गया ।

भारत में ग्रामीण जीवन का अध्ययन अंग्रेजी शासन के दौरान 19वीं सदी में आरम्भ हो गया । चूँकि भारत को ग्रामों का देश कहा जाता है, यहाँ की संस्कृति ग्रामीण संस्कृति है जिसका 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है । गाँव ही हमारी प्राचीन समृद्ध सभ्यता एवं संस्कृति के स्रोत एवं केन्द्र रहे हैं । हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों, वेदों, पुराणों, स्मृतियों एवं संहिताओं में ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों पर विस्तार से चर्चा मिलती है । किन्तु पिछली शताब्दियों में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं कि गाँवों का प्राचीन स्वरूप बदल गया । औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात के विकसित साधनों ने ग्रामीण जीवन को प्रभावित किया और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी गाँव परावलम्बी हो गये, सुसंगठित गाँवों में विघटन की प्रक्रिया आरम्भ हुई । लोग शहरी तड़क-भड़क एवं सुविधाओं की ओर आकर्षित हुए और गाँव छोड़कर शहर जाने लगे । गाँवों में गरीबी, बेकारी, ऋण एवं कृषि से सम्बंधित अनेक समस्याओं ने जन्म लिया । अंग्रेजी शासनकाल में गाँवों की बिगड़ती दशा पर कोई ध्यान नहीं दिया गया और गाँवों की हालत बद से बदतर होती गयी । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण समाज के अध्ययन की ओर विद्वानों का अधिक ध्यान गया,

इस प्रकार ग्रामीण समाज शास्त्र की उत्पत्ति भरत में स्वतंत्रता के पूर्व हुई परंतु विकास में गति स्वतंत्रता के बाद आयी ।

1.2.2 ग्रामीण समाजशास्त्र का विकास

ग्रामीण अध्ययन संसार के अनेक देशों में प्रारम्भ हो गया था, लेकिन उसे सबसे अधिक महत्व अमेरिका में दिया गया, क्योंकि 1890 से 1920 का युग अमेरिका में ''शोषण युग'' के नाम से जाना जाता है । यह समय अमेरिकी समाज के लिए घोर संकट का था और ग्रामीण समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयी थीं जिनसे मुक्ति पाना आवश्यक था । भूमि की कीमत चरम सीमा तक बढ़ चुकी थी । किसानों की भूमि छिन गयी थी और भूस्वामियों का बोलबाला था। सबसे पहले इन समस्याओं की ओर पादरियों का ध्यान गया, फिर विद्वानों ने इस क्षेत्र में कार्य आरंभ किया ।

(a) अमेरिका में ग्रामीण समाजशास्त्र–ग्रामीण जीवन से सम्बंधित जो भी साहित्य था, वह संगठित और व्यवस्थित नहीं था । पत्रकारों, सार्वजनिक नेताओं एवं पी-एच० डी० के लिए शोध छात्रों ने ग्रामीण जीवन एवं समस्या से सम्बंधित अनेक लेख प्रकाशित किये । इस साहित्य ने अमेरिका में ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन को संभव बनाया । अमेरिका के कई कॉलेजों और विश्वविद्यालय में ग्रामीण समाजशास्त्र का विधिवत् अध्ययन प्रारम्भ किया गया, जिनमें शिकागो विश्वविद्यालय, मिशिगन विश्वविद्यालय, मिशिगन स्टेट कॉलेज, उत्तरी डकोटा विश्वविद्यालय, कोलम्बिया विश्वविद्यालय, हार्वर्ड विश्वविद्यालय तथा विसकान्सिन विश्वविद्यालय विशेष उल्लेखनीय हैं ।

ग्रामीण जीवन में पायी जाने वाली प्रमुख समस्याओं के अध्ययन के लिए 1908 ई० में अमरिकी राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने एक कमीशन की स्थापना की, जिसका नाम ''ग्रामीण जीवन आयोग'' रखा गया था जिसके अध्यक्ष डीन बेले थे । इस आयोग ने ग्रामीण जीवन की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करने के लिए कृषकों एवं ग्रामीण नेताओं के बीच एक प्रश्नावली की पाँच लाख प्रतियाँ वितरित कीं जिनमें से लगभग एक लाख प्रश्नावलियाँ उत्तर सहित इस आयोग को प्राप्त हो गयीं । बाद में इसने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, उसी को समाजशास्त्र के वैज्ञानिक स्वरूप का प्रारम्भ माना जा सकता है । प्रो० देसाई ने इस बारे में लिखा है, वास्तव में इस प्रतिवेदन ने जो तथ्य प्रदान किये, उसे इस ग्रामीण समाजशास्त्र के लिए घोषणा-पत्र कह सकते हैं ।

सन् 1906 ई० से 1912 ई० के बीच कोलम्बिया विश्वविद्यलाय ने अनेक महत्वपूर्ण शोध लेख प्रकाशित किये । यह लेख क्षेत्रीय साक्षात्कार पद्धति पर आधारित होने के साथ ही प्रामाणिक सांख्यिकी से परिपूर्ण थे । 1915 में चार्ल्स जे० गालपिन ने The Social Anatomy of an Agricultural Community नामक पुस्तक प्रकाशित की जो ग्रामीण समाजशास्त्र के भावी विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुई । 1916 ई० में प्रो० जॉन एस० गिलेटी ने Rural Sociology नामक सर्वप्रथम पुस्तक लिखी जिसके द्वारा ग्रामीण समाजशास्त्र को समाजशास्त्र की एक प्रमुख शाखा की प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई । इसी के प्रभाव से अमरीकी समाजशास्त्र सोसाइटी ने सन् 1917 में सर्वप्रथम ग्रामीण समाजशास्त्र ने अध्ययन के लिए एक प्रथम विभाग स्थापित कर दिया । यह वह महत्वपूर्ण प्रयास था जिससे ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने के लिए विद्वानों को एक निश्चित दिशा मिल सकी ।

अमेरिकन कृषि विभाग के अन्तर्गत 1919 ई० में Bureau of Agricultural Economics की स्थापना की गई, जिसमें ग्रामीण जीवन अध्ययन के लिए कला विभाग खोला गया जिसका नाम बदलकर बाद में ग्रामीण जनसंख्या एवं ग्रामीण जीवन (Rural Population and Rural Life) रख दिया गया । इस विभाग के अध्ययन कार्यों के कारण ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति और विकास को काफी प्रोत्साहन मिला । केन्द्रीय सरकार ने भी इसके अध्ययन को प्रोत्साहित किया और आर्थिक सहायता दी । अमेरिका में भी ग्रामीण समाजशास्त्र के विकास के लिए समाज विज्ञान अनुसंधान समिति का गठन किया गया । इस

समिति के प्रशिक्षित एवं योग्य कार्यकर्त्ताओं ने ग्रामीण समाजशास्त्र के लिए अत्यन्त उपयोगी सामग्री संकलित की ।

राज्यों को ग्रामीण अध्ययनों में सहायता एवं प्रोत्साहन देने के लिए केन्द्र सरकार ने 1925 में पुरनेल ऐक्ट (Purnell Act) पारित किया । अब राज्य सरकारों द्वारा भी ग्रामीण अध्ययन तो किये जाने लगे किन्तु प्रशिक्षित अध्ययनकर्त्ताओं के अभाव में उच्च श्रेणी के अध्ययन नहीं हुए । सन् 1930 में अमेरिका भयंकर आर्थिक मन्दी की चपेट में आ गया । अत: इस मन्दी का सामना करने के लिए सरकार ने ग्रामीण अध्ययनों पर बल दिया । ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए अमेरिका के कृषि विभाग के अन्तर्गत Bureau of Agricultural Economics तथा Farm Life Studies की स्थापना की गई । 1930 में 'ग्रामीण समाजशास्त्र का व्यवस्थित मूल ग्रंथ' नामक पुस्तक प्रकाशन के साथ ही ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रगति में तेज गति आयी । 1936 में Rural Sociology नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । 1937 में Rural Sociological Society की स्थापना की गयी । इस संस्था ने ग्रामीण समाजशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया । साथ ही विद्वानों को संगठित होकर कार्य करने की प्रेरणा दी । द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त ग्रामीण समाजशास्त्र पर कम काम हुआ । युद्ध के उपरान्त ग्रामीण समाजशास्त्र का क्रमिक विकास हुआ । ग्रामीण समाज एवं उसकी समस्याओं से सम्बंधित अनेक पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, लेखों एवं शोध रचनाओं का प्रकाशन हुआ । महत्वपूर्ण रचनाओं में चार्ल्स पी० लुमिक की Studies in Rural Social Organisation 1945, टी०एल० स्मिथ की People and Institutions, 1946, सी० टायलर की Rural Life in Argentina, 1948, एन० नेल्सन की Rural Cuba और Rural Sociology, 1950 आदि प्रमुख रचनाएँ हैं । इस प्रकार धीरे-धीरे अमेरिका में ग्रामीण समाजशास्त्र एक सुनिश्चित समाजशास्त्र के रूप में हो गया । आज अमेरिका में अनेक विद्वान जैसे जिमरमैन, सोरोकिन, सिम्स रेडफील्ड और स्मिथ आदि ग्रामीण समाजशास्त्र के विकास में योगदान दे रहे हैं । सम्भवत: इसी का परिणाम है कि अमेरिका में ग्रामीण समाजशास्त्र पर प्रकाशित होने वाले ग्रंथों एवं लेखों की संख्या सबसे अधिक है ।

(b) भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का विकास—भारत को गाँवों का देश कहा जाता है, जहाँ कुल जनसंख्या का करीब 70 प्रतिशत गाँवों में निवास करता है । यहाँ के गाँवों की भी अनेक समस्याएँ हैं । इसलिए स्वतंत्रता से पूर्व यहाँ के ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं का अध्ययन महसूस किया गया । इसलिए अंग्रेजी शासन के दौरान 19वीं सदी में ग्रामीण जीवन से सम्बंधित कुछ अध्ययन किये गये, जिनका उद्देश्य ग्रामीण पुनर्निर्माण, सुधार या कल्याण नहीं, बल्कि राजनैतिक लाभ प्राप्त करना था । लेकिन इस से लाभ यह हुआ कि उनके द्वारा स्थापित प्रारूपों ने आगे होने वाले अध्ययनों का मार्गदर्शन किया । सन् 1803 में ग्रामीण पारिवारिक एवं आर्थिक जीवन का विवरण देने वाली एक पुस्तक Indian Recreation विलियम टेनेण्ट द्वारा प्रकाशित की गयी । सन् 1861 में एस० एच० मेन की Ancient Law नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें भारतीय ग्रामों की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं एवं भूमि व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया । दूसरी ओर कार्ल मार्क्स ने साम्यवाद की अवधारणा के संदर्भ में भारतीय ग्रामीण समुदाय के जीवन से सम्बंधित अनेक महत्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत किये । इसके फलस्वरूप सभी प्रकार की विचारधाराओं में विश्वास करने वाले विद्वान ग्रामीणजीवन को अपने अध्ययन का केन्द्र बिन्दु मानने लगे । प्रथम भारतीय लाल बिहारी डे ने Bengal Peasant Life नामक पुस्तक लिखी । इस अध्ययन में आपने पश्चिम बंगाल के एक गाँव के सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्रियाकलापों, जमींदारों के शोषण तथा कृषकों एवं महाजनों के सम्बंध का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया । इसके बाद जार्ज ग्रियर्सन ने बिहार में कृषकों के जीवन से सम्बंधित अध्ययन कर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया ।

20वीं शताब्दी के आरम्भ में ही भारत में ग्रामीण अध्ययनों के प्रति रुचि दिखाई जाने लगी । इसी समय जे० सी० जेक ने क्षेत्रीय तथा राज्य स्तर पर एक सर्वेक्षण विधि से ग्रामीण अध्ययन प्रारम्भ किया ।

सन् 1916 में उनकी पुस्तक Economic Life of Bengal District प्रकाशित हुई । इसी समय एम० ए० डावलिंग की पुस्तक Punjab Peasant in Prosperity प्रकाशित हुई । सन् 1916 में डा० राधाकमल मुखर्जी की पुस्तक Foundation of Economic Democracy of The East प्रकाशित हुई । सर्वप्रथम सन् 1918 में गिलबर्ट स्लेटर ने भारत के बारह गाँवों का अध्ययन करके Some South Indian Villages नाम की पुस्तक प्रकाशित की । 1919 में डा० लूकस की पुस्तक Economic Life of a Punjab Village प्रकाशित हुई । इस पुस्तक में ग्रामीण जीवन के सामाजिक पक्ष की तुलना में आर्थिक पक्ष को ही अधिक महत्व दिया गया । 1927 में एफ० एल० ब्रेयन की पुस्तक Village Uplift in India तथा सन् 1936 में स्ट्रिकलैण्ड की पुस्तक Rural Welfare in India प्रकाशित हुई । अमेरिकन समाजशास्त्री डब्ल्यू० एच० वाइजर ने लखनऊ के एक गाँव करीमपुर का अध्ययन किया । यह वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित एक व्यवस्थित ग्रामीण अध्ययन था, जो कि अनेक विद्वानों की प्रेरणा का स्रोत बना । बाद में वाइजर की दो पुस्तक Behind the Mud Walls और Hindu Jajmani System प्रकाशित हुई जिससे उन्हें ग्रामीण समाजशास्त्री के रूप में मान्यता प्राप्त हुई ।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण अध्ययन के प्रति बढ़ती हुई रुचि के कारण ग्रामीण समाजशास्त्र के विकास को एक नई दिशा प्राप्त हुई है । स्वतंत्रता से पूर्व महात्मा गाँधी ने ''गाँवों को वापस चलो'' का जो नारा दिया था, इसको साकार करने के लिए भारत सरकार ने ग्रामीण विकास के प्रति अपना ध्यान केन्द्रित किया । इस प्रयास में ग्रामीण जीवन के अध्ययन के साथ साथ सामुदायिक विकास कार्यक्रम को भी व्यापक स्तर पर लागू किया गया । योजना आयोग के गठन के उपरान्त इसी आयोग से सम्बद्ध एक ''कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन'' की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य भारत जैसे आर्थिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक विविधता से युक्त देश के लिए प्रत्येक क्षेत्र की जानकारी प्राप्त करना तथा विभिन्न विकास योजनाओं को प्रभावशाली ढंग से लागू करना था । भारतीय समाज के पुनर्निर्माण के महत्व को स्वीकार करते हुए भारत के बुद्धिजीवियों का ध्यान ग्रामीण जीवन की ओर आकर्षित हुआ और फलस्वरूप ग्रामीण अध्ययन में व्यापक रुचि ली जाने लगी । इस समय सरकार के प्रयासों से अनेक प्रतिष्ठित विदेशी समाजशास्त्रियों को भी ग्रामीण अध्ययन के लिए भारत में आमंत्रित किया गया । इन विद्वानों ने अन्तर-सांस्कृतिक शोध के रूप में विदेशी तथा भारतीय ग्रामीण समुदायों पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किये । भारतीय विद्वानों ने भी अनेक मौलिक ग्रन्थों तथा शोध प्रबंधों द्वारा ग्रामीण समाजशास्त्र के विकास में प्रमुख योगदान दिया है । इन विद्वानों की रचनायें अधिकतर अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हुईं जैसे श्यामाचरण दुबे की भारतीय ग्राम तथा भारत के परिवर्त्तनशील ग्राम, एम० एन० श्रीनिवास की भारत के ग्राम, मैसूर के एक गाँव की सामाजिक व्यवस्था, एक स्मृति ग्राम, डी० एन० मजुमदार की भारतीय ग्राम में जाति तथा संचार, राधाकमल मुकर्जी की ग्रामीणसमाज की गत्यात्मकता (The Dynamics of a Rural Society), प्रदीप रॉय की ग्रामीण विकास में संचार का प्रभाव, भारतीय कृषकों में कृषि सम्बंधी नवीन परिवर्त्तन आदि हैं । इन प्रमुख रचनाओं के अतिरिक्त अनेक मासिक, पाक्षिक, त्रैमासिक तथा अन्य पत्रिकाओं से भी भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र के विकास को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है । वास्तव में, वर्त्तमान युग में ग्रामीण अध्ययनों की सूची इतनी लम्बी हो चुकी है कि सभी का उल्लेख करना सम्भव नहीं है ।

1.2.3 निष्कर्ष

ग्रामीण समाजशास्त्र चूँकि समाजशास्त्र के एक अंग के रूप में जाना जाता है, इसलिए यह समाजशास्त्र की एक नवीन विषय वस्तु है । 19वीं शताब्दी के प्रथम चरणों में अमेरिका में ग्रामीण समस्याओं को समझने का प्रयास आरंभ हुआ । कुछ अन्तराल के बाद ग्रामीण समस्याओं का व्यवस्थित रूप से अध्ययन किया जाने लगा, जिसके फलस्वरूप ग्रामीण समाजशास्त्र का उदय हुआ । अमेरिका में 18वीं शताब्दी के अन्तिम काल और 19वीं शताब्दी के आरम्भिक काल में ग्रामीण समाज के शोषण की प्रवृत्ति

बहुत अधिक बढ़ गई थी, इस सम्बंध में सिम्स ने लिखा कि सम्पूर्ण काल ग्रामीण सामाजिक के पतन का काल था । ग्रामीण समस्याओं के निदान के लिए सबसे पहले पादरियों ने अपना प्रयास आरंभ किया । इसके बाद ग्रामीण समस्याओं की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ । फिर इन विद्वानों ने गाँवों से सम्बंधित विभिन्न समस्याओं का वैज्ञानिक आधार पर अध्ययन करना आरंभ किया । इस प्रकार इस तरह ग्रामीण समाज का अध्ययन आरंभ हुआ । भारत में भी ग्रामीण जीवन का अध्ययन अंग्रेजी शासनकाल से ही शुरू हो गया । लेकिन स्वतंत्रता के बाद विद्वानों ने अधिक ध्यान दिया । इस प्रकार भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति हुई । अमेरिका में कई कॉलेजों और विश्वविद्यालयों ने ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन प्रारंभ किया, इसके बाद अमेरिका के अनेक विश्वविद्यालय में ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन आरंभ हुआ तथा ग्रामीण समाज के अध्ययन के लिए अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की । विद्वानों ने ग्रामीण समाज के सम्बंध में अनेकों पुस्तकों को लिखीं । इसी प्रकार भारत में भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण समाज का अध्ययन तेजी से आरंभ हुआ तथा अनेक विद्वानों का ध्यान ग्रामीण जीवन की ओर गया ।

1.3 सारांश

ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति सबसे पहले अमेरिका में हुई । क्योंकि 18वीं शताब्दी का अन्तिम काल तथा 19वीं शताब्दी का प्रारंभिक काल अमेरिकन समाज के लिए शोषण का काल था, जिसमें अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म हुआ । इन समस्याओं की प्रकृति को जानने के लिए अध्ययन करना आवश्यक था । इसलिए विद्वानों का ध्यान इस ओर गया । अतः बदलते हुए ग्रामीण परिवेश में अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप में ग्रामीण समाजशास्त्र का उदय हुआ । ग्रामीण जीवन से सम्बंधित साहित्य, पत्रकारों, सार्वजनिक नेताओं तथा ग्रामीण जीवन से सम्बंधित शोध ने ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन को संभव बनाया । इसके बाद अमेरिका में कई कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन किया जाने लगा । 1908 में अमेरिका के राष्ट्रपति ने ग्रामीण जीवन के अध्ययन के लिए एक कमीशन की स्थापना की। फिर अनेकों ग्रामीण समाज से सम्बंधित अध्ययन किये गये तथा विद्वानों ने बहुत-सी पुस्तकें लिखीं । सन् 1930 में अमेरिका भयंकर आर्थिक मन्दी की चपेट में आ गया, इसलिए इस मंदी का सामना करने के लिए सरकार ने ग्रामीण अध्ययन पर बहुत बल दिया । 1930 में 'ग्रामीण शास्त्र का व्यवस्थित ग्रन्थ' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ । आज अमेरिका में ग्रामीण समाजशास्त्र पर प्रकाशित ग्रंथों एवं लेखों की संख्या सबसे अधिक है ।

भारत में भी अंग्रेजी काल से ही ग्रामीण समाज का अध्ययन आरंभ हो गया था । स्वतंत्रता के बाद इसमें तेजी आई । चूँकि भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है । इन लोगों की समस्यायें भी बहुत गंभीर थीं इसलिए ग्रामीण जीवन का अध्ययन आवश्यक था । सन् 1803 में विलियम टेनेण्ट ने ग्रामीण पारिवारिक एवं आर्थिक जीवन से सम्बंधित एक पुस्तक Indian Recreation प्रकाशित की । प्रथम भारतीय विद्वान लाल बिहारी डे ने Bengal Peasant Life नामक पुस्तक लिखी । इसके अतिरिक्त अनेक भारतीय विद्वानों ने भारतीय ग्रामीण जीवन से सम्बंधित पुस्तकें लिखी हैं । भारत में ग्रामीण समाज के अध्ययन के लिए अनेक अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना की। इस प्रकार भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का विकास हो रहा है ।

1.4 पाठ में पारिभाषिक शब्द

विधिवत्, अनुसंधान, ग्रामीण, स्मृति, साहित्य, प्रशिक्षित, साम्यवाद

1.5 अभ्यास के प्रश्न

1.5.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ग्रामीण समाजशास्त्र का उदय सबसे पहले किस देश में हुआ ?
   (क) भारत
   (ख) अमेरिका
   (ग) फ्रांस
   (घ) इंगलैण्ड

उत्तर–(ख)

2. **Bengal Peasant Life** पुस्तक लिखी है –
   (क) ए० आर० देसाई
   (ख) राधाकमल मुखर्जी
   (ग) लाल बिहारी डे
   (घ) वाईजर

उत्तर–(ग)

1.5.2 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र के विकास को संक्षेप में लिखें ।

उत्तर–1.2.2 देखें ।

1.5.3 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास की विवेचना करें ।

उत्तर–1.2.1 एवं 1.2.2 को देखें ।

1.6 प्रस्तावित पाठ

1. टी०·एल० स्मिथ : दि सोस्योलॉजी ऑफ रूरल लाईफ
2. गुप्ता एवं शर्मा : ग्रामीण समाजशास्त्र

❖❖❖

ग्रामीण समाजशास्त्र : परिभाषा एवं अध्ययन क्षेत्र

पाठ-संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 ग्रामीण समाजशास्त्र की सामान्य अवधारणा

- 2.2.1 अर्थ एवं परिभाषा
- 2.2.2 अध्ययन क्षेत्र
- 2.2.3 भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व एवं आवश्यकता
- 2.2.4 प्रकृति
- 2.2.5 निष्कर्ष

2.3 सारांश

2.4 पाठ में पारिभाषिक शब्द

2.5 अभ्यास का प्रश्न

- 2.5.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न
- 2.5.2 लघुउत्तरीय प्रश्न
- 2.5.3 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

2.6 प्रस्तावित पाठ

2.0 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य ग्रामीण समाजशास्त्र से सम्बंधित पूरी जानकारी प्राप्त करना है । इसके लिए ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थ एवं विद्वानों के द्वारा दी गई परिभाषाओं को समझेंगे । साथ ही ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे । फिर ग्रामीण समाजशास्त्र का भारत में महत्व और आवश्यकता के सम्बंध में जानकारी प्राप्त करेंगे । साथ ही इसकी प्रकृति की विवचेना करेंगे । अन्त में पूरे पाठ का निष्कर्ष देंगे ।

2.1 परिचय

समाजशास्त्र का स्थान विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है किन्तु यह विज्ञान अधिक प्राचीन नहीं है । नवीन विज्ञान होते हुए भी यह अन्य विज्ञानों की तुलना में अधिक तीव्र गति से विकसित

हुआ है । इसके अन्तर्गत विशिष्ट क्षेत्रों का विकास हुआ । ग्रामीण समाजशास्त्र इन्हीं विशिष्ट क्षेत्रों में एक है जिसके द्वारा ग्रामीण पर्यावरण में निवास करने वाले मानव समूहों के विभिन्न पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है । विश्व की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है । उनका व्यवसाय और जीवन शहरी क्षेत्रों में निवास करने वालों से भिन्न है, तथा उनका व्यवहार, जीवन-शैली एवं विश्वास ग्रामीण पर्यावरण के गहन रूप से प्रभावित है । इसलिए उनका अध्ययन करने के लिए समाजशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा के रूप में ग्रामीण समाजशास्त्र का उदय हुआ ।

2.2 ग्रामीण समाजशास्त्र की सामान्य अवधारणा

2.2.1 ग्रामीण समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा

ग्रामीण समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक शाखा है जो ग्रामीण क्षेत्रों में पाये जाने वाले सामाजिक सम्बंधों, सामाजिक प्रक्रियाओं एवं सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करती है । इसका उद्देश्य ग्रामीण पर्यावरण से प्रभावित ग्रामों में रहने वाले मानव समाज का सूक्ष्म, व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन करना है ।

ग्रामीण समाजशास्त्र दो शब्दों के योग से बना है - ग्रामीण + समाजशास्त्र । ग्रामीण जिनका अर्थ है - ग्राम से सम्बंधित, गाँव में रहने वाला तथा ग्राम पर्यावरण से प्रभावित और समाजशास्त्र का अर्थ है - समाज के सामाजिक सम्बंधों का वैज्ञानिक अध्ययन । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ग्रामीण सामाजिक संगठन, ग्रामीण संरचना, कार्य, प्रक्रियायें, ग्रामीण सामाजिक सम्बंधों व ग्रामीण पर्यावरण आदि के क्रमिक एवं व्यवस्थित ज्ञान को ही ग्रामीण समाजशास्त्र कहा जाता है । अनेक विद्वानों ने ग्रामीण समाजशास्त्र को ग्रामीण सुधार का शास्त्र, ग्रामीण जीवन का शास्त्र, ग्रामीण पुनर्निर्माण का शास्त्र आदि की संज्ञा प्रदान की है ।

विभिन्न विद्वानों ने ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थ को अनेक परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट किया है । इन परिभाषाओं तथा इसकी सामान्य विवेचना के द्वारा ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थ तथा इसकी सामान्य प्रकृति को निम्नलिखित रूप में हम स्पष्ट कर सकते हैं।

स्टुअर्ट चैपिन ने अपना विचार देते हुए कहा है कि ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र ग्रामीण जनसंख्या ग्रामीण सामाजिक संगठन एवं ग्रामीण समाज में कार्यरत सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है ।

सैण्डरसन ने कहा कि, ''ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में पाये जाने वाले जीवन का समाजशास्त्र है ।'' इसका अर्थ है कि सामाजिक सम्बंधों का कोई भी वह वैज्ञानिक अध्ययन जो ग्रामीण पर्यावरण से प्रभावित है, ग्रामीण समाजशास्त्र कहा जा सकता है ।

लॉरी नेल्सन ने लिखा कि ''ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु ग्रामीण पर्यावरण में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के समूहों का विवेचन एवं विश्लेषण है ।''

ए० आर० देसाई के अनुसार, ''ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य, ग्रामीण सामाजिक संगठन उसकी संरचना, प्रकार्यों तथा विकास की प्रकृतियों का वैज्ञानिक, व्यवस्थित तथा विस्तृत, अध्ययन करना है तथा क्रमबद्ध अध्ययन के आधार पर इसके विकास से संबद्ध नियमों को ज्ञात करना है ।

पिताम्बर ने अपनी पुस्तक ''ऐन इण्ट्रोडक्टरी सरल सोशियालॉजी (An Introductory Rural Sociology)'' में लिखा है कि ''ग्रामीण समाजशास्त्र को ग्रामीण मानव के एक ऐसे वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो ग्रामीण मानव का उन समूहों के संदर्भ में अध्ययन करता है जिन समूहों के बीच वह अन्तः क्रिया करता है ।''

स्मिथ के शब्दों में, "ग्रामीण समाजशास्त्र की संज्ञा उन समाजशास्त्रीय तथ्यों एवं सिद्धांतों को दी जाने योग्य है जो ग्रामीण सामाजिक सम्बंधों के सारथी के अनुसार, ग्रामीण समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक पहलुओं में ग्रामीण सामाजिक संगठन का वैज्ञानिक व्यवस्थित व तुलनात्मक अध्ययन करना है ।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि ग्रामीण समाजशास्त्र के बारे में निम्न तथ्यों एवं निष्कर्ष प्रकट होते हैं-(1) ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्रामीण पर्यावरण में मानवीय सम्बंधों का अध्ययन करता है । (2) ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत ग्रामीण सामाजिक समूहों, ग्रामीण सामाजिक प्रक्रियाओं एवं अन्तः क्रियाओं, ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं संगठन आदि का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है । (3) ग्रामीण समाजशास्त्र सम्पूर्ण ग्रामीण जीवन का ही विज्ञान है । (4) यह केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही नहीं बल्कि ग्रामीण समस्याओं के निराकरण, ग्रामीण पुनर्निर्माण और उत्थान में व्यावहारिक योग देने वाला विज्ञान है ।

2.2.2 ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र

ग्रामीण समाजशास्त्र सामान्य समाजशास्त्र की ही विशिष्ट शाखा है । यह एक नवीन और उदीयमान विज्ञान है । अतः इसकी परिभाषाओं और विषय वस्तु को लेकर विद्वानों में मतभेद पाया जाता है । इस विवाद के उपरान्त भी कुछ ऐसे बिन्दु हैं जिस पर सभी विद्वानों का एकमत पाया जाता है । हम विवादग्रस्त और एकमत वाले दोनों क्षेत्रों पर विचार करेंगे ।

ग्रामीण समाजशास्त्र को लेकर निम्नलिखित विषयों पर विद्वानों में मतभिन्नता पाई जाती है –

(1) ग्रामीण समाजशास्त्र को एक प्रथम विज्ञान माना जाए अथवा समाजशास्त्र की ही एक प्रथम शाखा के रूप में स्वीकार किया जाए ।

(2) ग्रामीण समाजशास्त्र को अपना अध्ययन ग्रामीण समाज तक ही सीमित रखना चाहिए अथवा उसे ग्रामीण एवं नगरीय जीवन का तुलनात्मक अध्ययन, उनका पारस्परिक सम्बंध एवं एक-दूसरे पर प्रभाव आदि का अध्ययन भी करना चाहिए ।

(3) ग्रामीण समाजशास्त्र में नगरीकरण और ग्राम्यकरण की प्रक्रियाओं की संरचना तथा इनका जनता पर प्रभाव का भी अध्ययन किया जाय अथवा नहीं ।

(4) ग्रामीण समाजशास्त्र एक शुद्ध विज्ञान बना रहे अथवा एक व्यावहारिक विज्ञान भी । शुद्ध विज्ञान के रूप में ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण सभा के विकास को प्रभावित करने वाले नियमों की जानकारी प्रदान करे अथवा व्यावहारिक विज्ञान के रूप में ग्रामों की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक समस्याओं का अध्ययन कर उन्हें हल करने में मार्गदर्शन दे और ग्रामीण पुनर्निर्माण में रचनात्मक सुझाव दें ।

(5) ग्रामीण समाजशास्त्र बदलते हुए ग्रामीण जीवन का निष्पक्ष रूप से एक विचारात्मक संयंत्र के रूप में योगदान दें ।

ग्रामीण समाजशास्त्र के सम्बंध में कुछ विन्दुओं पर विद्वानों के विचारों में एकरूपता पाई जाती है जिसे निम्न रूप में हम देख सकते हैं –

(1) सभी ग्रामीण समाजशास्त्री इस बात को स्वीकार करते हैं कि सामुदायिक जीवन ग्रामीण एवं नगरीय दो भागों में विभक्त किया जा सकता है । ये दोनों ही भाग परस्पर अन्तःक्रिया करते हैं । एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और साथ-साथ प्रभावित भी होते हैं । फिर भी इन दोनों के जीवन में मौलिक अन्तर पाया जाता है ।

(2) सभी ग्रामीण समाजशास्त्री इस बात को स्वीकार करते हैं कि ग्रामीण पर्यावरण में पनपे हुए सामाजिक जीवन की विशेषताएँ एवं प्रकृति अपने ही ढंग की होती हैं तथा वह शहरी पर्यावरण में पनपे सामाजिक जीवन से भिन्न होती है ।

(3) सभी ग्रामीण समाजशास्त्री इस मत को स्वीकार करते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र का मूल उद्देश्य ग्रामीण सामाजिक संगठन, उसकी संरचना, कार्य तथा उसके विकास की प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक, व्यवस्थित और व्यापक अध्ययन करना है । ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्देश्य इस प्रकार के अध्ययनों के आधार पर ग्रामीण जीवन के विकास के नियमों को ज्ञात करना है ।

ग्रामीण समाजशास्त्र के सम्बंध में विद्वानों ने अलग-अलग अपने विचार दिये हैं जिसे निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-लोरी नेल्सन ने ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र को तीन वर्गों में विभाजित करके स्पष्ट किया है । (1) ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन का प्रथम पक्ष है कि वह ग्रामीण पर्यावरण में रहने वाले मानव के सम्बंधों को अध्ययन का प्रथम पंक्ष है कि वह ग्रामीण पर्यावरण में रहने वाले मानव के सम्बंधों का अध्ययन करता है । इस दृष्टिकोण से उसका क्षेत्र सामुदायिक जीवन के कुछ विशेष क्षेत्रों अथवा उपक्षेत्रों के अध्ययन तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह सम्पूर्ण विश्व में पाये जाने वाले विभिन्न ग्रामीण समुदायों के अन्तर्गत सभी समूहों का अध्ययन करने से सम्बंधित है । इस प्रकार इस विज्ञान का क्षेत्र अधिक विस्तृत है । (2) द्वितीय पक्ष इस विज्ञान की व्यापकता से सम्बंधित है । इस बारे में नेल्सन का कहना है कि यदि ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत समाज के वर्त्तमान स्वरूप का ही वर्णन एवं विश्लेषण किया जायेगा तो इसके अध्ययन क्षेत्र में पूर्णतया नहीं आ सकती । वर्त्तमान ग्रामीण समाज एक लम्बी अवधि में होने वाले सांस्कृतिक परिवर्त्तनों का संचित परिणाम है । ऐसी दशा में इसका अध्ययन एक विशेष काल तक ही सीमित न रहकर विभिन्न कालों में पायी जाने वाली ग्रामीण विशेषताओं के अध्ययन से सम्बंध होना चाहिए । इसका अर्थ है कि ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन काल परिप्रेक्ष्य से सम्बंधित होना चाहिए । (3) तृतीय पक्ष का सम्बंध अध्ययन की गहनता से है । इसके सम्बंध में नेल्सन का विचार है कि ग्रामीण समाजशास्त्र में उन सभी विषयों का अध्ययन किया जाना चाहिए जो ग्रामीण समुदायों एवं उनके अन्तर्गत व्यक्तियों के व्यवहारों को प्रभावित करते हों । इस प्रकार ग्रामीण समुदाय में, विभिन्न अभिव्यक्तियों, मूल्यों, महत्वाकांक्षाओं, सहानुभूति, प्रतियोगिता अथवा विषमता से सम्बंधित सभी प्रकार के व्यवहारों का अध्ययन होना आवश्यक है ।

टी० एल० स्मिथ ने ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र को निम्नलिखित तीनों भागों में बाँटा है ।

(1) **जनसंख्या**—इसके अन्तर्गत ग्रामीण जनसंख्या तथा उसका वितरण, वृद्धि, बनावट 'शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं तथा स्वास्थ्य, जनसंख्या का आवास-प्रवास आदि का अध्ययन किया जाए ।

(2) **ग्रामीण सामाजिक संगठन**—इसके अन्तर्गत आवासीय प्रतिमान, भूमि सर्वेक्षण, भूमि सुधार, कृषि व्यवस्था, सामाजिक विभेदीकरण तथा सामाजिक संस्करण आदि का अध्ययन किया जाए ।

(3) **सामाजिक प्रक्रियाएँ**—इसके अंतर्गत विभिन्न संगठन एवं विघटनकारी प्रक्रियाएँ आती हैं जैसे पतिस्पर्द्धा, संघर्ष, सहयोग, व्यवस्थापन, सात्मीकरण, एकीकरण, संस्कृतिकरण तथ ामाजिक गतिशीलता आदि ।

विद्वानों के विचारों के आधार पर समन्वयात्मक दृष्टि से हम ग्रामीण समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र को निम्नांकित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं—

(1) **ग्रामीण सामाजिक संरचना**—ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत उन सभी इकाइयों का अध्ययन किया जाता है जो ग्रामीण सामाजिक संरचना का निर्माण करती हैं । ग्रामीण सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाली, इकाई में परम्पराओं, मूल्यों, प्रथाओं, लोकाचारों एवं संस्थाएँ हैं । वर्त्तमान युग में ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत अनेक विद्वान ग्रामीण आवास का अध्ययन करने लगे हैं । क्योंकि गाँव में अक्सर प्रभु जातियों, खेतिहर जातियों, दस्तकारी जातियों तथा अस्पृश्य जातियों के आवास के केन्द्र एक दूसरे से काफी पृथक होते हैं एवं उनकी दशाएँ एक दूसरे से अत्यधिक भिन्न होती हैं ।

(2) ग्रामीण सामाजिक संगठन—सामाजिक संगठन का निर्माण विभिन्न प्रकार के पदों, सम्बंधों, सत्ता आदि से मिलकर बनता है । ग्रामीण सामाजिक संगठन के विभिन्न तत्वों, प्रकारों का अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र का ही क्षेत्र है । इसके अंतर्गत ग्रामों में पाये जाने वाले विभिन्न संगठनों जैसे परिवार एवं विवाह, जाति व्यवस्था, वर्ग व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, प्रशासन व्यवस्था, स्वास्थ्य धर्म आदि संरचना एवं प्रकार्यों का अध्ययन किया जाता है ।

(3) ग्रामीण सामाजिक समूह—प्राचीनकाल से ही मानव को समूह में रहने की प्रवृत्ति रही है । मानव ने अपने उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए परिवार, क्रीड़ा समूह, मनोरंजन समूह, सांस्कृतिक समूह, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समूहों का निर्माण किया है । इन समूहों के द्वारा ग्रामीण मानव के सम्बंधों का विस्तार होता है । अतः ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामों में पाये जाने वाले विभिन्न समूहों का भी अध्ययन करता है ।

(4) ग्रामीण सामाजिक संस्थाएँ—सामाजिक संस्थाएँ सामूहिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की समाज द्वारा स्वीकृत विधियाँ हैं । इसके अंतर्गत ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण रीति-रिवाज, जनर..तयाँ, रूढ़ियों, प्रथाओं, नियम एवं कानून आदि के स्वरूप, प्रकार एवं प्रकार्यों का अध्ययन करता है । ग्राम में पायी जाने वाली विभिन्न पारिवारिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक, राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन भी ग्रामीण समाजशास्त्र के द्वारा किया जाता है ।

(5) ग्रामीण सामाजिक प्रक्रियाएँ—वर्त्तमान ग्रामीण जीवन में सहयोग, व्यवस्थापन, सात्मीकरण, एकीकरण, संघर्ष, प्रतिस्पर्द्धा, परसंस्कृति ग्रहण विद्यमान है । इन सभी प्रक्रियाओं का अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत एक प्रथम विषय क्षेत्र के रूप में किया जाता है ।

(6) ग्रामीण सामाजिक परिवर्त्तन—वर्त्तमान में ग्रामीण समुदाय परिवर्त्तन की प्रक्रिया में है । इन परिवर्त्तनों में कुछ स्वाभाविक और कुछ नियोजित हैं । ग्रामीण समाजशास्त्र में इन दोनों प्रकार के परिवर्त्तनों, कारणों, प्रभावों, दिशा, गति, प्रकृति, स्वरूप आदि का अध्ययन किया जाता है ।

(7) ग्रामीण सामाजिक समस्याएँ—ग्रामीण समाजशास्त्र का उद्‌गम ग्रामीण सामाजिक जीवन की समस्याओं के अध्ययन एवं समाधान के कारण ही हुआ है । इसलिए ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के रूप में ग्रामीण पर्यावरण में व्याप्त सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के कारणों, परिणामों के अध्ययन को लिया जाता है ।

(8) ग्रामीण राजनीतिक संस्थाएँ—किसी भी प्रजातांत्रिक देश के गाँवों में वहाँ की राजनीतिक संस्थाओं की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है । भारत में स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत ग्रामीण स्तर पर नई राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना हुई है । ग्रामीण समाजशास्त्र इन संस्थाओं के स्वरूप, प्रभाव, दोष एवं पुनर्गठन के दृष्टिकोण से इन संस्थाओं का एक पृथक क्षेत्र के रूप में अध्ययन किया जाता है ।

(9) ग्रामीण जनसंख्या—ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में निवास करने वाली जनसंख्या का भी अध्ययन करता है । यह ग्रामीण समाजशास्त्र का जनांकिकीय पक्ष है । इसके अन्तर्गत ग्रामीण जनसंख्या की रचना, प्रकृति, वितरण, उत्पत्ति, घनत्व, उसकी भौतिक एवं मानसिक विशेषताओं, जन्म एवं मृत्युदर, आवास प्रवास, आयु संरचना, लोगों का रहन-सहन, व्यवसाय, आर्थिक स्थिति, भाषा, जाति, धर्म आदि का अध्ययन किया जाता है ।

(10) ग्रामीण पुनर्निर्माण—वर्त्तमान में अधिकांश ग्रामीण समाजशास्त्री का विचार है कि ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र केवल ग्रामीण जीवन का सैद्धान्तिक अध्ययन तक ही सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि इसके अन्तर्गत ग्रामीण पुनर्निर्माण से सम्बंधित विभिन्न कार्यक्रमों का मूल्यांकन करके उपयोगी सुझाव देना भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है । इसीलिए ग्रामीण जीवन से सम्बंधित विभिन्न विकास योजनाओं के स्वरूप,

योजनाओं से उत्पन्न समस्याओं अथवा योजनाओं की सफलता में बाधक तत्वों का अध्ययन करना भी ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्वपूर्ण क्षेत्र है ।

(11) ग्रामीण संचार—ग्रामीण समाजशास्त्र का नया विषय क्षेत्र ग्रामीण संचार है । विद्वानों का विचार है कि ग्रामीण संचार के द्वारा ही वर्त्तमान ग्रामीण परिवर्त्तनों एवं ग्रामों की संरचनात्मक विशेषताओं को स्पष्ट किया जा सकता है । इन क्षेत्रों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—(1) संप्रेषक अध्ययन (2) संचार माध्यम (3) उन व्यक्तियों से सम्बंध जो संचार प्रक्रिया से प्रभावित हैं (4) संचार के प्रभाव का अध्ययन ।

2.2.3 भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व एवं आवश्यकता

भारत एक कृषि प्रधान देश है । इसलिए ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन का विशेष महत्व है । इसके अध्ययन के द्वारा ही हम यहाँ की जीवनधारा और संस्कृति को समझ सकते हैं, ग्रामीण एवं नगरीय जीवन की तुलना तथा ग्रामीण समस्याओं के कारणों को ज्ञात कर उसका निदान ढूंढ सकते हैं । इस प्रकार नवीन भारत के निर्माण में ग्रामीण समाजशास्त्रियों के योगदान का लाभ प्राप्त कर सकते हैं । भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र की आवश्यकता और महत्व को हम निम्नलिखित रूप से देख सकते हैं –

(1) भारत एक कृषि प्रधान ग्रामों का देश है—भारत की करीब 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है । इनकी जीवनचर्या केवल कृषि पर ही आधारित है । ग्रामीण जनता और कृषि का घनिष्ठ सम्बंध है । भारतीय कृषि प्रधान समाज पाँच हजार वर्षों से अपने ग्रामीण पर्यावरण में रहता चला आया है । इसकी सामाजिक संरचना, सामाजिक व्यवस्था, व सामाजिक प्रक्रियाओं में समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार परिवर्त्तन होता रहा है । इन सभी के बारे में जानकरी प्राप्त करने के लिए ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है । अतः भारतीय समाज की आवश्यकता, उसकी प्राचीन परम्परायें, उन परम्पराओं में विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिश्रण, उनका उद्‌भव और विकास उस समाज की उन्नति और अवनति आदि पहलुओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ग्रामीण अध्ययनों की जितनी आवश्यकता है उतनी आवश्यकता सम्भवतः पहले कभी अनुभव नहीं की गई थी ।

(2) भारतीय ग्रामीण समस्याओं का वास्तविक ज्ञान—आज भारतीय ग्रामीण समाज अनेक सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक समस्याओं से ग्रसित है । भारतीय ग्रामीण समाज को उन कुरीतियों और समस्याओं से उसी समय मुक्त किया जा सकता है जब हमारा आधुनिक शासकवर्ग व अभिजातवर्ग भारतीय ग्रामीण समस्याओं से भली-भाँति परिचित हो। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक ग्रामीण जीवन परम्परावादी अप्रगतिशील तथा आधुनिकता से कोसों दूर रहा। ब्रिटिश शासनकाल में भारत में पाश्चात्य शासन प्रणाली, विदेशी शासन, पाश्चात्य शिक्षा, औद्योगीकरण, नगरीकरण विभिन्न प्रकार के तकनीकी विकास के फलस्वरूप भारतीय ग्रामीण समाज में अनेक प्रकार के परिवर्त्तन हुए और उन परिवर्त्तनों के आने से ग्रामीण समाज और सामाजिक व्यवस्था में अनेक प्रकार के तनाव और संघर्ष की समस्यायें उत्पन्न हुईं । इस प्रकार की सभी समस्याओं के अध्ययन के लिए ग्रामीण समाज का अध्ययन करना और भी आवश्यक और महत्वपूर्ण हो गया है ।

(3) ग्रामीण जीवन में पुनर्जागरण—भारत की 80 प्रतिशत जनता अभी तक अपनी परम्परावादी सामाजिक संरचना और सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी हुई है । यदि ऐसे समाज में आधुनिकता लानी है, शिक्षा का प्रचार करना है, सामुदायिक विकास योजनाओं को सुचारु रूप से क्रियान्वित करना है, पंचायती राज और विकेन्द्रीकरण की योजनाओं को यदि सफल बनाना है तो ग्रामीण जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्त्तन लाना आवश्यक है । ये क्रान्तिकारी परिवर्त्तन उसी अवस्था में ठीक ढंग से आ सकता है, जबकि इस प्रकार के कारकों से होने वाले बहुमुखी परिवर्त्तनों से सम्बंधित ग्रामीण समाज में किये गये अध्ययन हमारे पास हो । इसके लिए समाजशास्त्रीय अध्ययन आवश्यक है ।

(4) भारतीय गाँवों में परिवर्त्तन की प्रक्रिया—भारतीय गाँवों में परिवर्त्तन की प्रक्रिया स्वतंत्रता के बाद तेज हो गई है । ब्रिटिश शासनकाल में भी परिवर्त्तन लाये गये थे । गाँवों में मालगुजारी प्रथा, जमींदारी तथा जागीरदारी प्रथा, सिंचाई आदि व्यवस्था आरम्भ की गई थी । किन्तु स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण जीवन में अनेक तकनीकी परिवर्त्तन लाने का प्रयास किया जा रहा है । आज प्रत्येक गाँवों को सड़क, रेल, तार डाक, रेडियो व टेलीविजन से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है । आज आवश्यकता और महत्व उन अध्ययनों का है जो इन भौतिक परिवर्त्तनों के फलस्वरूप गाँवों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का वैज्ञानिक व निष्पक्ष अध्ययन करें ।

(5) जनसंख्या में वृद्धि रोकने के लिए—भारतीय जनसंख्या की वृद्धि की गति आज विश्व में सबसे अधिक है । स्वतंत्रता के बाद योजनाओं के द्वारा इस गति को रोकने का प्रयास किया गया है । वास्तव में भारतीय निर्धनता, भुखमरी, बेकारी तथा अशिक्षा का मुख्य कारण भारत में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या है । इसकी गति को कम करने का लक्ष्य हम उस समय प्राप्त कर सकते हैं जब समाजशास्त्री ग्रामीण लोगों के परिवार नियोजन सम्बंधी दृष्टिकोण का अध्ययन करें जिससे हमें परिवार नियोजन में आने वाली अड़चनों का सही ज्ञान प्राप्त हो सकता है ।

(6) आदिवासी क्षेत्रों के विकास हेतु—भारत में लगभग पाँच करोड़ आदिवासी विभिन्न राज्यों में विशेषकर ग्रामीण व जंगली क्षेत्रों में निवास करते हैं । सरकार की एक बड़ी समस्या है कि इन आदिवासी की बहुल्य संख्याओं को सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक आदि मुख्य धाराओं के निकट कैसे लाया जाये । इसलिए इन क्षेत्रों में समाजकीय अध्ययन आवश्यक है जिससे कि आदिवासी जातियों की परिवर्त्तन सम्बंधी अवस्थाओं का और अधिक स्पष्ट चित्र हमारे सामने आ सके ।

(7) अनुसूचित जाति एवं पिछड़ी जातियों का अध्ययन—भारत में अनुसूचित जातियों और पिछड़ी जातियों की एक बड़ी संख्या निवास करती है, जो अधिकतर गाँवों में निवास करती है । अधिकतर संख्या अधुनिकता से दूर है । आज आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिक जातियों और पिछड़ी जातियों के लोग जो ग्रामवासी हैं, उनकी वास्तविक सामाजिक, आर्थिक दशा के समाज शास्त्रीय अध्ययनों द्वारा ज्ञात किया जाय । इससे हमें इनकी समस्याओं के बारे में सही जानकारी प्राप्त हो सकेगी ।

2.2.4 ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रकृति

ग्रामीण समाजशास्त्र को एक विज्ञान की कसौटी पर मूल्यांकन करने के लिए इसकी विशेषताओं को निम्न रूप में देखा जा सकता है-

1. ग्रामीण समाजशास्त्र वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है—ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत जिन तथ्यों को एकत्रित किया जाता है उनका आधार विशुद्ध रूप से वैज्ञानिक पद्धति तथा वैज्ञानिक प्रवृत्ति है । नवीन विषय होने के कारण इसमें अत्यधिक विकसित पद्धतियों का उपयोग नहीं किया जा रहा है । उसके बाद भी ग्रामीण समाजशास्त्र नवीन पद्धतियों की खोज में निरंतर संलग्न है । इस समय सांख्यिकीय पद्धति, ऐतिहासिक पद्धति तथा समाजमिति आदि वे प्रमुख वैज्ञानिक पद्धतियाँ हैं जिनके माध्यम से अध्ययनकर्त्ता ग्रामीण मानव, उसके पर्यावरण तथा ग्रामीण तथ्यों का अध्ययन करता है । इन पद्धतियों को महत्वपूर्ण बनाने के लिए एक निर्धारित परिकल्पना का निर्माण किया जाता है तथा प्रश्नावली तथा अनुसूची का प्रयोग किया जाता है । एकीकृत तथ्यों का वर्गीकरण और सारणीकरण तथा सामान्य निष्कर्षों को प्रस्तुत करने से भी ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक बन जाती है ।

2. ग्रामीण समाजशास्त्र 'क्या है' का विवेचन करता है—जैसे प्राकृतिक विज्ञान केवल यथार्थ परिस्थितियों के अध्ययन से ही सम्बंधित होता है, उसी प्रकार ग्रामीण समाजशास्त्र में भी केवल 'क्या है' का वर्णन किया जाता है, क्या होना चाहिए का नहीं । इसका अर्थ यह है कि ग्रामीण समाजशास्त्र किसी कल्पना अथवा सुधार की भ्रांति को उतना महत्व नहीं देता जितना कि कार्यों में विद्यमान यथार्थ दशाओं में अध्ययन की । ये दशायें चाहे संगठनकारी हों अथवा विघटनकारी ।

3. ग्रामीण समाजशास्त्र कार्य और कारण की व्याख्या करता है—कोई भी विज्ञान किसी भी घटना की खोज के लिये उसके कारणों और उसके प्रभावों का भी पता लगाता है । बिना कारण के कोई घटना घटित नहीं होती है और प्रत्येक घटना कुछ प्रभाव छोड़ती है । ग्रामीण समाजशास्त्र भी क्या है, की व्याख्या कार्यकारण के आधार पर करता है ।

4. सिद्धांतों की सार्वभौमिकता—विज्ञान की एक महत्वपूर्ण विशेषता इससे सम्बंधित नियमों अथवा सिद्धांतों का सर्वव्यापक होना है । ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत विभिन्न अध्ययनों के आधार पर जिन सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है उसकी प्रकृति काफी सीमा तक सर्वव्यापी होती है । उसका अभिप्राय यह है कि एक विशेष ग्रामीण पर्यावरण में ग्रामीण जीवन से सम्बंधित जिन सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है, वे सिद्धान्त उन्हीं के समान किसी दूसरे पर्यावरण में उतने ही सत्य प्रमाणित होते हैं और उसमें किसी प्रकार का अपवाद नहीं पाया जाता है ।

5. ग्रामीण समाजशास्त्र सिद्धान्तों का निर्माण करता है और उनकी परीक्षा करता है—ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन से सम्बंधित अध्ययनों के आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण करता है तथा उनकी परीक्षा को अत्यधिक महत्व देता है । ग्रामीण अध्ययन में परिकल्पनाओं के आधार पर तथ्यों को एकीकृत करके उनका वर्गीकरण तथा सामान्यीकरण करता है । साथ ही, अन्य क्षेत्रों के सामान्य निष्कर्षों अथवा सिद्धान्तों की परीक्षा की जाती है । अगर समय, स्थान अथवा परिस्थिति के अनुसार सिद्धान्तों में परिवर्त्तन की आवश्यकता होती है जो उनके वैज्ञानिक आधार पर संशोधन कर लिया जाता है । इस विशेषता के आधार पर भी ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक बन जाती है ।

6. ग्रामीण समाजशास्त्र में भविष्यवाणी करने की क्षमता—ग्रामीण समाजशास्त्र 'क्या होगा' का भी अध्ययन करता है लेकिन 'क्या होना चाहिए' पर यह मौन रहता है । भविष्यवाणी विज्ञान का एक आधारभूत तत्व है । विभिन्न अध्ययनों के आधार पर ग्रामीण समाज शास्त्र जो सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत करता है वे भविष्य की संभावनाओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं । यह सम्भव है कि भविष्य में ये परिणाम पूर्णत: सत्य न हों क्योंकि वास्तविकता यह है कि बहुत बार प्राकृतिक विज्ञानों से सम्बंधित पूर्वानुमान में भी कुछ परिवर्त्तन अवश्य देखने को मिल जाते हैं । वास्तव में भविष्यवाणी पूर्णतया अपरिवर्त्तनशील तत्व नहीं है । बल्कि यह वह स्थिति है जो सत्य के अति निकट होती है ।

उपर्युक्त सभी तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र की प्रकृति वैज्ञानिक है और यह अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति एक विज्ञान है ।

2.2.5 निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सामान्य रूप से मानव जीवन दो प्रकार के पर्यावरण में ही व्यतीत करता है - ग्रामीण पर्यावरण और नगरीय पर्यावरण । ग्रामीण समाजशास्त्र, समाजशास्त्री ज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है । ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत सभी ग्रामीण समूहों के अध्ययन का समावेश है । इसका क्षेत्र मुख्य रूप से ग्रामीण सामाजिक संगठन एवं सामाजिक प्रतिमानों के अध्ययन से सम्बद्ध है । समाजशास्त्र की तुलना में ग्रामीण समाशास्त्र इस अर्थ में अधिक व्यावहारिक है कि इसका संबन्ध सिद्धान्तों से अधिक न होकर ग्रामीण समुदायों के व्यावहारिक जीवन से है तथा ग्रामीण समाजशास्त्र अपेक्षाकृत रूप में एक स्थिर और परम्परागत समाज का अध्ययन होने के कारण तुलनात्मक पद्धति को अधिक महत्व देता है । विभिन्न समाजों में ग्रामीण समाजशास्त्र का अध्ययन अधिक या कम महत्वपूर्ण हो सकता है, लेकिन संसार में कोई भी समाज ऐसा नहीं है जो ग्रामीण समाज के अध्ययन की अवहेलना करके सामाजिक नीतियों को प्रभावपूर्ण बना सके ।

2.3 सारांश

ग्रामीण समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक शाखा के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक सम्बंधों, प्रक्रियाओं एवं संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है । ग्रामीण समाजशास्त्र दो शब्दों ग्रामीण और समाजशास्त्र से मिलकर बना है । ग्रामीण समाजशास्त्र के सम्बंध में अनेक विद्वानों ने अपने विचार दिये हैं, जिनमें प्रमुख स्टुअर्ट चैपिन, सैण्डरसन, लॉटीनेल्सन, ए०आर० देसाई, चिताम्बर तथा स्मिथ हैं । इनके विचारों को हम इस प्रकार देख सकते हैं - समाजशास्त्रीय ज्ञान का उपयोग जब ग्रामीण परिस्थिति पर किया जाता है और ग्रामीण सामाजिक ढाँचे का अध्ययन किया जाता है, तब उसी ज्ञान की शाखा को ग्रामीण समाजशास्त्र कहते हैं । ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र के सम्बंध में कुछ बिन्दुओं पर विद्वानों के बीच मतभेद पाये जाते हैं । इसलिए सुविधा के दृष्टिकोण से इसके क्षेत्र को दस भागों में बाँटा जा सकता है ।

— ग्रामीण जीवन के बारे में जानने के लिए आवश्यक है कि ग्रामीण संरचना के बारे में अध्ययन किया जाए ।

— ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत सामाजिक संगठन के विभिन्न तत्वों, प्रकारों एवं कार्यों का अध्ययन किया जाता है ।

— ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत ग्रामों में पाये जाने वाले विभिन्न समूहों का भी अध्ययन करता है ।

— ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत ग्रामीण रीतिरिवाज, जनरीतियाँ, रूढ़ियों, प्रथाओं, नियम एवं कानून आदि के स्वरूप, प्रकार एवं प्रकार्यों का अध्ययन करता है ।

— ग्रामीण समाजशास्त्र व्यक्ति एवं समूह के बीच होने वाली अन्तः क्रियाओं का अध्ययन करता है ।

— इसके अन्तर्गत ग्रामीण जीवन में होने वाले परिवर्त्तनों का अध्ययन किया जाता है ।

— इसके अन्तर्गत ग्रामीण जीवन में विभिन्न समस्याओं जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि का अध्ययन किया जाता है ।

— ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत ग्रामीण जनसंख्या के विभिन्न स्वरूप और विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है ।

— ग्रामीण समाजशास्त्र केवल ग्रामीण के सैद्धान्तिक पक्ष का ही अध्ययन नहीं करता, बल्कि इसके अन्तर्गत ग्रामीण पुनर्निर्माण से सम्बंधित विभिन्न कार्यक्रमों का मूल्यांकन भी करता है ।

2.4 पाठ में पारिभाषिक शब्द

व्यवस्थित, पर्यावरण, संरचना, रचनात्मक, न्यायकता, सहानुभूति, जनरीतियाँ, संचार

2.5 अभ्यास का प्रश्न

2.5.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. **ऐन इन्ट्रोडक्ट्री रूरल सोशियालोजी पुस्तक के लेखक कौन हैं ?**

   (क) ए० आर० देसाई

   (ख) स्मिथ

(ग) चिताम्बर

(घ) लॉरी-नेल्सन

उत्तर–(ग)

2. ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र ग्रामीण जनसंख्या, ग्रामीण सामाजिक संगठन एवं ग्रामीण समाज में कार्यरत सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है । यह किसका विचार है ?

(क) स्टुअर्ट चैपिन

(ख) लॉरी नेल्सन

(ग) ए० आर० देसाई

(घ) चिताम्बर

उत्तर–(क)

2.5.2 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. ग्रामीण समाजशास्त्र का क्या अर्थ है ?

उत्तर–2.5.1 देखें ।

2.5.3 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ग्रामीण समाजशास्त्र क्या है ? इसके अध्ययन क्षेत्र की विवेचना करें ।

उत्तर–2.2.1 एवं 2.2.2 देखें ।

2.6 प्रस्तावित पाठ पुस्तक

1. गुप्ता एवं शर्मा : **ग्रामीण समाजशास्त्र**
2. टी० एल० स्मिथ : **दि सोशियोलॉजी**
3. ए० आर० देसाई : **भारत के ग्रामीण समाजशास्त्र**

❖❖❖

ग्रामीण समुदाय

पाठ-संरचना

3.0 उद्देश्य
3.1 परिचय
3.2 ग्रामीण समुदाय की सामान्य विशेषताएँ
  3.2.1 परिभाषा
  3.2.2 विशेषताएँ
  3.2.3 निष्कर्ष
3.3 सारांश
3.4 पाठ में पारिभाषिक शब्द
3.5 अभ्यास का प्रश्न
  3.5.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न
  3.5.2 लघुउत्तरीय प्रश्न
  3.5.3 दीर्घउत्तरीय प्रश्न
3.6 प्रस्तावित पाठ

3.0 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य ग्रामीण समुदाय के सम्बंध में पूरी जानकरी प्राप्त करना है । इसके सम्बंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें ग्राम और समुदाय की अवधारणा को अलग-अलग जानना होगा । इसके उपरान्त हम ग्रामीण समुदाय की परिभाषा के सम्बंध में विस्तृत जानकरी प्राप्त करेंगे जिससे ग्रामीण समुदाय की मुख्य विशेषताएँ स्पष्ट होंगी ।

3.1 परिचय

ग्रामीण समुदाय वह समुदाय है जो अपने विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति करते हुए एक निश्चित क्षेत्र में निवास करता है जिसके सदस्यों में हम की भावना होती है और जो सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सभ्यता के ऐसे धागे में बंधे होते हैं जो दूसरे समुदायों से भिन्न समझा जाता है । दूसरे शब्दों में ग्रामीण समुदाय से तात्पर्य एक ऐसे संकुचित प्रादेशिक घेरे से घिरे मनुष्यों के समूह के एक क्षेत्र से होता है जिसमें मनुष्य जीवन के सामान्य ढंग अपनाए जाते हैं ।

3.2 ग्रामीण समुदाय की सामान्य विशेषताएँ

3.2.1 अर्थ एवं परिभाषा

ग्रामीण समुदाय दो शब्दों ग्रामीण और समुदाय से मिलकर बना है । इसलिए ग्रामीण तथा समुदाय को अलग-अलग स्पष्ट करना आवश्यक है । ग्रामीण शब्द को अनेक प्रकार से स्पष्ट किया गया है । मैकाइवर ने कहा है कि ''नगर और गाँव के बीच विभाजन की कोई सीमा रेखा नहीं है जिसके आधार पर यह बताया जा सके कि कहाँ पर ग्राम समाप्त होता है और कहाँ से नगर का प्रारम्भ होता है । ''कुछ विद्वान ग्रामीण शब्द को स्पष्ट करने के लिए सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन को आधार मानते हैं जबकि अनेक विद्वान व्यवसाय के आधार पर, ग्रामीण शब्द की विवेचना करते हैं ।'' अनेक विद्वानों ने जनसंख्या के आधार पर नगरीय एवं ग्रामीण विभेद को स्पष्ट किया है । सभी आधार अपर्याप्त हैं । मैकाइवर ने कहा कि, ''ग्रामीण और नगरीय शब्द मात्र भौगोलिक स्थिति को ही नहीं बल्कि सामुदायिक जीवन के प्रकारों को भी स्पष्ट करते हैं । दूसरे विद्वान के० एल० श्रीवास्तव ने कहा कि, ''ग्रामीण क्षेत्र वह है जहाँ पर लोग कृषि उद्योग में लगे हों अर्थात् वस्तुओं का प्राथमिक उत्पादन प्रकृति के सहयोग से करते हों ।''

समुदाय एक ऐसा वृहत मानव समूह है जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहता है तथा इनके बीच प्राथमिक सम्बंध होते हैं । गिन्सबर्ग ने कहा कि, ''समुदाय का अर्थ सामाजिक प्राणियों के एक ऐसे समूह से समझना चाहिए जो सामान्य जीवन व्यतीत करता हो । इस सामान्य जीवन में हम उन सभी सम्बंधों को सम्मिलित करते हैं जो इसका निर्माण करते हैं अथवा इससे परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं ।'' दूसरे विद्वान मैकाइवर और पेज ने लिखा कि ''समुदाय सामाजिक जीवन का वह क्षेत्र है जिसे सामाजिक सम्बद्धता की मात्रा द्वारा पहचाना जा सकता है ।''

ग्रामीण समुदाय–साधारण रूप में कहा जा सकता है कि ग्रामीण समुदाय ग्रामीण पर्यावरण में स्थित व्यक्तियों का कोई भी छोटा अथवा बड़ा समूह है जो प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति पर निर्भर करता है । प्रकृति की सहायता से आजीविका अर्जित करता है, प्राथमिक सम्बंधों को अपने लिए आवश्यक मानता है एवं साधारणतया एक दृढ़ सामुदायिकता की भावना के द्वारा बंधा रहता है । ग्रामीण समुदाय के सम्बंध में अनेक विद्वानों ने अपने विचार दिये हैं । ई० एस० बोगार्ड्स ने लिखा है, ''ग्रामीण समुदाय प्राथमिक समूहों का विस्तृत स्वरूप है । मेरिल तथा एलरिज के अनुसार ''ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत संस्थाओं और ऐसे व्यक्तियों का संकलन होता है जो छोटे से केन्द्र के चारों ओर संगठित होते हैं तथा सामान्य प्राकृतिक हितों में भाग लेते हैं ।'' ब्रूनर ने कहा कि ''एक ग्रामीण समुदाय व्यक्तियों का सामाजिक समूह है जो निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं और जीवन के लिए सामान्य ढंग को अपनाते हैं । पीके ने लिखा कि ''ग्रामीण समुदाय परस्पर सम्बंधित अथवा असम्बंधित उन व्यक्तियों का समूह है जो परिवार से अधिक विस्तृत एक बहुत बड़े घर अथवा परस्पर निकट स्थित गृहों में कभी अनियमित रूप से तथा कभी गली में रहता है तथा मूलतः कृषि योग्य खेतों में सामान्य रूप से खेती होती है, मैदानी भूमि को आपस में बाँट लेता है तथा आस पास की बेकार भूमि पर पशु चराता है जिस पर कि निकटवर्त्ती समुदायों की सीमाओं तक वह समुदाय अपने अधिकार का दावा करता है ।''

3.2.2 विशेषताएँ

ग्रामीण समुदाय के आधार पर इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

(i) कृषि ही मुख्य व्यवसाय–ग्रामीण समुदाय की परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समुदाय का मुख्य व्यवसाय कृषि ही है । प्राकृतिक रूप से ग्रामीण समुदाय और कृषि एक दूसरे के बिना ठीक वैसे ही अधूरे हैं जैसे जीव के बिना देह । कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण समुदाय का मुख्य आधार कृषि है । इस सम्बंध में स्मिथ ने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है, ''कृषि और वस्तुओं

को एकत्रित करने वाले व्यवसाय ग्रामीण अर्थशास्त्र के मूल आधार हैं । कृषक और ग्रामीण एक दूसरे के अनुरूप शब्द हैं ।''

(ii) जनसंख्या की न्यूनता—ग्रामीण लोग अपने कृषि कार्य के स्थान अर्थात् खेतों से अपने निवास घर अधिक दूर बनाने में अड़चन और असुविधा अनुभव करते हैं । कारण है कि खेतों की रक्षा, देखभाल आदि करने हेतु उन्हें वहाँ रहना पड़ता है । परिणामस्वरूप गाँव छोटे एवं बिखरे हुए होते हैं । जनसंख्या इसलिए भी होती है कि मनुष्यों का व्यवसाय कृषि होने के नाते अधिकांश भूमि का भाग उपज के कार्य में आता है । एक भूमि का बड़ा हिस्सा ग्राम के एक समुदाय के पास होता है । इसलिए अधिकाधिक भूमि कृषि कार्य में किसान की होती है तो जनसंख्या का न्यून होना अनिवार्य है ।

(iii) जनसंख्या की समानता—ग्रामों में जनसंख्या का अभाव तथा समान व्यवसाय होने के नाते ग्रामों में निवास करने वाले व्यक्तियों में समानता पाई जाती है अथवा व्यवसाय, स्वभाव, रहन-सहन, आपसी सम्बंध और दिनचर्या आदि प्राय: एक सी है ।

(iv) प्रकृति से सम्बंधित—ग्रामीण समुदाय कृषि पर निर्भर है और कृषि एक प्राकृति व्यवसाय है अर्थात् उसे प्रकृति की गतिविधियों पर निर्भर रहना पड़ता है । धूप, वर्षा, भूमि, जलवायु, खाद्य आदि ही कृषि का जीवन है जो कि स्वयं प्रकृति है । इन सब कार्यों में ग्रामीण समुदाय का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बंध हो जाता है जिसके फलस्वरूप जीवन में तथा खानपान में सादगी आ जाती है । ग्रामीण व्यक्ति प्रकृतिप्रिय बन जाते हैं । इसका प्रभाव उनके धर्म, विश्वास, परम्परा, इष्टदेवों आदि पर भी पड़ता है । वे धूप के लिएं सूर्य देवता, जल के लिए वरुण या इन्द्र देवता, अग्नि देवता, वनस्पति में बड़-वृक्षों की पूजा आदि करते हैं ।

(v) परिवार एक आधारभूत एवं नियंत्रण इकाई के रूप में—ग्रामों में परिवार ही सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई मानी जाती है, अर्थात् भारतीय ग्रामीण समुदाय में व्यक्ति को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है । व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा अधिकांश रूप में उसके परिवार पर ही निर्भर करती है । यही एक कारण है कि ग्रामों में परिवार को ही अत्यधिक महत्व दिया जाता है जिसके कारण परिवार का उत्तरदायित्व समुदाय एवं समाज दोनों के प्रति बढ़ जाता है ।

(vi) संयुक्त परिवार प्रणाली—ग्रामों में प्राय: संयुक्त परिवार हैं । ऐसे परिवार हैं जिनमें संयुक्त संगठन के आधार पर अनेक सम्बंधों की एक ही सम्मिलित व्यवस्था होती है । परिवार का समस्त आय-व्यय उसके सभी सदस्यों की आय पर निर्भर करता है । उनके सभी कार्य और कर्त्तव्य सम्मिलित रूप से चलते हैं । ग्राम परिवार में माता पिता, पुत्र, पोते आदि तथा उनकी सम्बंधित स्त्रियाँ और बच्चे सम्मिलित रूप से रहते हैं । परिवार का प्रत्येक कार्य खाना, पीना, रहना, खर्च आदि की भी सम्मिलित व्यवस्था होती है । संयुक्त परिवार ''सबके लिए एक और एक के लिए सब'' के सिद्धान्त पर चलता है । परिवार में वृद्धों की प्रधानता होती है ।

(vii) जाति प्रथा के आधार पर सामाजिक व्यवस्था—ग्रामों में संयुक्त परिवार के समान ही जाति प्रथा के आधार पर सामाजिक व्यवस्था है । ग्रामीण समाज जाति प्रथा के आधार पर अलग-अलग टुकड़ों में बँटा हुआ है । प्रत्येक जाति के सदस्यों के लिए उनके कार्य, पद और स्थान निश्चित हैं । इस कारण प्रत्येक जाति और परिवार दोनों ही समाज और समुदाय के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझते हैं । अपनी जाति के प्रति उत्तरदायित्व अनुभव करने के कारण वह अपना कार्य दृढ़ता और ईमानदारी से करते हैं । जाति प्रथा के आधार पर समाज की व्यवस्था की गई है । उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का स्थान क्रमश: रखा गया है ।

(viii) जजमानी प्रथा—ग्रामों में प्रत्येक जाति अपना परम्परागत पेशा करती है । इन पेशों को करने से इसकी सेवाओं द्वारा एक जाति का सम्पर्क दूसरी जाति से स्थापित हो जाता है । इसी प्रकार सभी जातियों

का सम्बंध किसी न किसी जाति से निर्धारित है । इस प्रकार विभिन्न जातियों के पास्परिक सम्बंध की एक अभिव्यक्ति जजमानी प्रथा है । प्रत्येक जाति के सदस्य के कुछ अपने जजमान होते हैं, जिन्हें वह पुश्तों से अपनी सेवा प्रदान करता चला आता है । जैसे धोबी-कपड़े धोने का, ब्राह्मण पुरोहित का कार्य करता है । अत: सेवा ग्रहण करने वाले परिवार या उसका कर्त्ता सेवा करने वाले का जजमान कहलाता है । इसे सेवा प्रदान करने और ग्रहण करने की प्रथा को जजमानी प्रथा कहते हैं ।

(ix) ग्रामीण जीवन में अकेलापन–ग्रामीण जीवन केवल अकेलापन का जीवन है अर्थात् इसका सम्पर्क बाहरी दुनिया से कम है । ये लोग अपना सामाजिक, राजनैतिक सम्बंध आस-पास के ग्रामों तक ही सीमित रखते हैं । ये लोग अपने-अपने क्षेत्र के लोगों को व्यक्तिगत रूप से जानते और पहचानते हैं । इन्हें अपने देश के बारे में विस्तृत ज्ञान नहीं होता ।

(x) परिवार उत्पादन की इकाई के रूप में–ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है और ये लोग कुछ छोटे-मोटे व्यवसाय, मछली पकड़ना, शिकार करना, लुहार-सुनार, मोची, कुम्हार आदि का कार्य घरेलू आधार पर करते हैं । इन सभी कार्यों में घर के सभी सदस्य स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सहयोग करते हैं ।

(xi) श्रम में निपुणता का अभाव–ग्रामों में कृषकों को खेती सम्बंधी सभी कार्य करने पड़ते हैं । हल की मरम्मत, रस्सी बनाना, कुआँ खोदना, चुनाई करना, बीज बोना, फसल काटना आदि । इस प्रकार चूँकि सभी कार्य करने पड़ते हैं अत: किसी भी एक कार्य में विशिष्टता नहीं आती अर्थात् वह सबका कुछ कुछ ज्ञान रखते हैं परन्तु पूर्ण ज्ञान किसी का प्राप्त नहीं कर पाते हैं ।

(xii) सादा और शुद्ध जीवन–ग्राम का कृषक अपने श्रम द्वारा केवल इतना ही कमा पाता है कि वह उसकी मुख्य आवश्यकताओं की पूर्त्ति में खर्च हो जाता है । इसके लिए आराम की वस्तुओं का उपयोग करना सपना बना रहता है, इसके लिए उसका जीवन सरल, सादा होता है ।

(xiii) जनमत का अधिक महत्व–ग्रामों में प्राय: सभी एक दूसरे को चाचा, भैया, दादा, काका आदि शब्दों से सम्बोधित करते हैं । इसलिए गाँव में इन बूढ़ों की प्रधानता होती है । ये ही पंच परमेश्वर होते हैं । इनके विचारों और न्याय की अवहेलना नहीं होती है । जनता का समस्त हित वृद्ध लोगों में निहित है । इनकी वाणी जनवाणी है ।

(xiv) अशिक्षा, भाग्यवादिता और जीवन का निम्न स्तर–गाँवों में शिक्षा प्रसार की सुविधाओं का नितान्त अभाव होने के कारण वहाँ की जनता अशिक्षित है । इस कारण वे लोग अन्धविश्वास और कुसंस्कारों में उलझे रहते हैं । वे भाग्य पर भरोसा करते हैं । साथ ही व्यवसाय से आय की कमी के कारण उनका जीवन-स्तर नीचा होता है ।

(xv) परम्परा और धर्म का महत्व–संसार में सबसे अधिक धर्म, प्रथायें और परम्परायें भारतीय ग्रामों में प्रचलित हैं । यहाँ लोग रूढ़िवादी होने के कारण अपनी अति प्राचीन प्रथाओं और परम्पराओं को महत्व देते हैं । सामाजिकों, रीतिरिवाजों का कठोरता से पालन होता है ।

(xvi) शान्तिपूर्ण स्थायी पारिवारिक जीवन–ग्रामों में प्राय: परम्परा, धर्म और जनमत के साथ-साथ नैतिक आदर्शों की कठोरता के कारण रोमांस का सर्वदा अभाव रहा है । वहाँ सामाजिक, पारिवारिक और धार्मिक संसार मानकर किया जाता है । पत्नी बाहर न जाकर अधिकतर घर पर ही कार्य करती है और पति की सेवा करती है । यह परिवार की देख-रेख करती है । वैवाहिक सम्बंध स्थायी और शान्तिपूर्ण होने से पारिवारिक जीवन स्थायी और शान्तिपूर्ण बन जाता है ।

(xvii) स्त्रियों की निम्न दशा–ग्रामीण स्त्रियों में पर्दा प्रथा, बाल विवाह, पुरुषों द्वारा स्त्री को हेय समझना, परिवार का बोझ होना, रूढ़िवादिता आदि परिस्थितियों के कारण स्त्रियों का स्तर निम्न होता है । स्त्रियाँ न केवल परिवार के समस्त निर्धारित कार्य ही करती हैं, बल्कि पुरुषों के साथ खेतों में भी कार्य करने

जाती हैं । उन्हें पुरुषों से अधिक कार्य करना पड़ता है । अतः ग्रामीण जीवन में स्त्रियों की दशा अत्यन्त ही शोचनीय है ।

3.2.3 निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम निष्कर्ष के तौर पर कह सकते हैं कि ग्रामीण समुदाय व्यक्तियों का वह समूह है जो एक निश्चित क्षेत्र में अपने विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति हेतु सांस्कृतिक, आर्थिक व सामाजिक रूप में इस प्रकार सम्बंध रखता है कि दूसरे समुदाय से भिन्न मालूम पड़े । ग्रामीण समुदाय का मुख्य व्यवसाय कृषि होता है तथा परिवार एक आधारभूत उत्पादन एवं नियंत्रण की इकाई के रूप में कार्य करता है । ग्रामीण समुदाय विशेषरूप से प्रकृति पर निर्भर करता है तथा यहाँ परम्परा और धर्म को अधिक महत्व दिया जाता है ।

3.3 सारांश

हम उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर ग्रामीण समुदाय के सम्बंध में एक सारांश प्रस्तुत कर सकते हैं ।

ग्रामीण समुदाय दो शब्दों ग्रामीण और समुदाय से मिलकर बना है । ग्रामीण को परिभाषित करने के लिए कोई निश्चित आधार नहीं है । कई विद्वानों ने सामाजिक एवं, आर्थिक पिछड़ेपन को आधार माना है तो दूसरे अनेक विद्वानों ने कृषि-व्यवसाय के आधार पर ग्रामीण शब्द की विवेचना की है । जबकि अनेक विद्वानों ने जनसंख्या के आधार पर ग्रामीण एवं नगरीय जीवन के बीच भेद स्पष्ट किया है ।

समुदाय एक ऐसा वृहत मानव समूह है जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहता है, जिसका समुदाय एक मूर्त्त संगठन है । समुदाय का निर्माण कभी भी जानबूझकर इच्छानुसार नहीं किया जा सकता है, बल्कि सामाजिक सम्बंधों द्वारा एक लम्बी अवधि में इसका विकास अपने आप होता रहता है । इसके अन्तर्गत व्यक्ति की शारीरिक, सामाजिक व मानसिक सभी प्रकार की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं ।

ग्रामीण समुदाय एक गाँव का समुदाय है जिसमें सापेक्षिक समानता, अनौपचारिकता, प्राथमिक सम्बंध की प्रधानता होती है । इसमें अधिकतर लोग अपना जीवन-यापन कृषि के द्वारा करते हैं अर्थात् लोग कृषि पर निर्भर करते हैं । चूँकि ग्रामीण समुदाय कृषि पर निर्भर करते हैं और कृषि एक प्राकृतिक व्यवसाय है इसलिए ग्रामीण समुदाय का जीवन प्रकृति से सम्बंधित है । यहाँ जनसंख्या का घनत्व बहुत निम्न होता है अर्थात् गाँव छोटे और बिखरे होते हैं । ग्रामीण समुदाय के व्यवसाय, स्वभाव, रहन-सहन आपसी सम्बंध और दिनचर्या प्रायः समान होते हैं । ग्रामीण समुदाय में परिवार सबसे महत्वपूर्ण इकाई है । यहाँ परिवार समुदाय की केवल एक पृथक इकाई ही नहीं बल्कि जीवन के अन्य सभी क्षेत्र को प्रभावित करने वाले एक सुदृढ़ व्यवसाय का अंग है । परिवार के द्वारा ही लोगों की प्रतिष्ठा निर्धारित होती है । यहाँ अधिकतर संयुक्त परिवार की प्रणाली देखने को मिलती है । ग्रामीण समुदाय में जाति प्रथा के आधार पर सामाजिक व्यवस्था है । इस कारण प्रत्येक जाति और परिवार दोनों ही समाज और समुदाय के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझते हैं । ग्रामीण समुदाय का जीवन सादा और सरल होता है । धर्म, प्रथायें और परम्परायें भारतीय ग्राम में अधिक प्रचलित हैं । साथ ही यहाँ नैतिक कठोरता अधिक होती है । पर्दा प्रथा, बाल विवाह, रूढ़िवादिता तथा पुरुषों द्वारा स्त्री को हेय समझने के कारण ग्रामीण समुदाय में स्त्रियों की स्थिति निम्न होती है ।

3.4 पाठ में पारिभाषिक शब्द

समुदाय, व्यवसाय, प्रकृति, कर्त्तव्य, प्रथा, परम्परा, जनमत, घनत्व, जजमानी

3.5 अभ्यास के प्रश्न

3.5.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ग्रामीण समुदाय में सामाजिक व्यवस्था का आधार क्या है ?

(क) वर्ग

(ख) जाति

(ग) वर्ग और जाति

(घ) इसमें कोई नहीं

उत्तर-(ख)

2. ग्रामीण समुदाय में परम्परा और धर्म का महत्व है ।

(क) अधिक

(ख) निम्न

(ग) मध्यम

(घ) इसमें कोई नहीं

उत्तर-(क)

3.5.2 लघुउत्तरीय प्रश्न

1. ग्रामीण समुदाय क्या है ? उसकी व्याख्या करें ।

उत्तर–2.2.1 को देखें ।

2. ग्रामीण समुदाय की मुख्य पाँच विशेषताओं का वर्णन करें ।

उत्तर–2.2.2 को देखें ।

3.5.3 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ग्रामीण समुदाय से आप क्या समझते हैं ? इसकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें ।

उत्तर–2.2.1 और 2.2.2 को देखें ।

3.6 प्रस्तावित पाठ

1. जी. के. अग्रवाल : **ग्रामीण समाजशास्त्र**

2. शम्भू रतन त्रिपाठी : **ग्रामीण समाजशास्त्र**

❖❖❖

ग्रामीण और नगरीय जीवन में अन्तर

पाठ-संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 ग्रामीण और नगरीय जीवन

- 4.2.1 ग्रामीण का अर्थ
- 4.2.2 नगर का अर्थ
- 4.2.3 ग्रामीण एवं नगरीय जीवन में अन्तर
- 4.2.4 निष्कर्ष

4.3 सारांश

4.4 पाठ में पारिभाषिक शब्द

4.5 अभ्यास के प्रश्न

- 4.5.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न
- 4.5.2 लघुउत्तरीय प्रश्न
- 4.5.3 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

4.6 प्रस्तावित पाठ

4.0 उद्देश्य

इस पाठ में हम ग्रामीण और नगरीय जीवन के बीच अन्तर को स्पष्ट करेंगे । इसके लिए हम ग्रामीण एवं नगर किसे कहते हैं ? इसकी अवधारणा एवं परिभाषा देंगे । इसके बाद ग्रामीण एवं नगरीय जीवन के बीच भेद को प्रस्तुत करेंगे । फिर इसका एक निष्कर्ष रूप देंगे ।

4.1 परिचय

संसार में मानव जाति दो प्रकार के पर्यावरण में निवास करती है । एक ग्रामीण तथा दूसरा नगरीय पर्यावरण है । ग्रामीण समाज वह वातावरण है जिसमें सामुदायिक जीवन के उद्देश्यों के लिए प्राकृतिक पर्यावरण के अनेक पहलुओं का सम्पूर्ण संशोधन किया जाता है । ग्रामीण का प्रकृति से प्रत्यक्ष और निकट सम्पर्क पाया जाता है । जहाँ मानव और प्रकृति के बीच अन्तःक्रिया का रूप अधिक निकट, प्रत्यक्ष और गहन है । जहाँ मानव और प्रकृति के बीच अप्रत्यक्ष और क्षीण सम्बंध पाया जाता है वह नगरीय स्थिति है ।

इन दोनों के पर्यावरणों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है । यह पर्यावरण अन्तर ही दो भिन्न प्रकार के सामाजिक जीवन को जन्म देता है । इन दोनों प्रकार के जीवन की तुलना इस तथ्य को स्पष्ट करने में सहायक होती है कि ग्रामीण और नगरीय समाजों की विभिन्न संरचना तथा जीवन प्रक्रिया अधिकांशतः उनके विभिन्न पर्यावरणों का परिणाम है ।

4.2 ग्रामीण और नगरीय जीवन

4.2.1 ग्रामीण का अर्थ

जब हम ग्रामीण शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा तात्पर्य ग्रामीण पर्यावरण में रहने वाले व्यक्तियों से होता है । जिस प्रकार विद्वानों ने 'ग्राम' शब्द को अनेक प्रकार से स्पष्ट किया है, उसी प्रकार ग्रामीण शब्द के विवेचन में भी भिन्नता देखने को मिलती है । विभिन्न विद्वानों ने ग्रामीण शब्द की अनेक व्याख्या प्रस्तुत की है । कुछ विद्वानों का विचार है कि जहाँ आर्थिक एवं सामाजिक, दृष्टि से पिछड़े हुए लांग रहते हैं उस क्षेत्र को ग्रामीण कहा जाय, दूसरी ओर कुछ विद्वानों का विचार है कि ग्रामीण शब्द उनके लिए उपर्युक्त माना जाता है, जहाँ कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया गया है । इसी आधार पर कृषक और ग्रामीण को पर्याप्त के रूप में प्रयोग किया जाता है । अनेक विद्वानों ने जनसंख्या के आधार पर ग्रामीण शब्द की विवेचना की है । परन्तु एक आधार पर ग्रामीण को परिभाषित करने से यह परिभाषा अधूरी रह जाती है क्योंकि ग्राम में दूसरे आधार मौजूद हैं । इसलए मैकाइवर ने कहा कि, ''ग्रामीण एवं नगरीय शब्द मात्र भौगोलिक स्थिति को ही नहीं बल्कि सामुदायिक जीवन के प्रकारों को भी स्पष्ट करते हैं ।'' के. एन. श्रीवास्तंव ने कहा कि ''ग्रामीण क्षेत्र वह है जहाँ हर लोग कृषि उद्योग में लगे हों अर्थात् वस्तुओं का प्राथमिक उत्पादन प्रकृति के सहयोग से करते हों ।''

4.2.2 नगर का अर्थ

कुछ नपे तुले शब्दों में नगर को परिभाषित करना काफी कठिन है, क्योंकि नगरों के लिए हम जिस कसौटी का प्रयोग करते हैं, वह देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार परिवर्त्तनशील है । नगर की अवधारणा ऐतिहासिक एवं भौगोलिक अवस्थिति के अनुसार बदलती है । प्रत्येक सभ्यता की नगर के विषय में अपनी अवधारणा होती है जैसे प्राचीन राज्य में उत्तम कोटि के नगर से अभिप्राय ऐसे स्थान से था जहाँ सिर्फ कृषक थे, परन्तु आज के नगर उनसे पूर्णतः भिन्न हैं । आज के युग में नगरों की जनसंख्या के आधार पर परिभाषित करना अवैज्ञानिक सिद्ध हो चुका है । सरल शब्दों में, नगर या शहर प्रायः उन स्थानों को कहा जाता है जहाँ मानव जाति के बढ़ते हुए समूहों का तेजी से एकत्रीकरण ह रहता है । नगर के सम्बंध में अनेक विद्वानों ने विचार दिए हैं, जिनमें ममफोर्ड ने लिखा कि अपने सम्पूर्ण अर्थ में नगर एक भौगोलिक तन्तुजाल, आर्थिक संगठन, सामाजिक कार्य की रंगभूमि तथा सामूहिक एकता का सुरुचि सम्पन्न प्रतीक है । एक ओर वह सामान्य घरेलू एवं आर्थिक कार्यकलापों का स्थूल ढाँचा है तो दूसरी ओर मानव संस्कृति के महत्तर अर्थपूर्ण कार्यों एवं उदात्त भावनाओं की चेतनायुक्त नाटकीय पृष्ठभूमि है । आर० फ्रीडमैन ने लिखा कि नगर की प्रकृति को केवल जनसंख्या के आँकड़ों के आधार पर पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता । यह अत्यधिक जटिल प्रघटना है जिसमें इसके अंतर्गत रहने वाले लोगों के जीवन तथा आस-पास के क्षेत्र में होने वाले क्रियाकलापों के विभिन्न पक्ष सन्निहित हैं । नगर में अपेक्षाकृत घनी जनसंख्या होती है, जो परस्पर सम्बंधित अनेक ऐसे कार्यों में लगी होती है जिनके द्वारा न्यूनाधिक रूप से व्यापक क्षेत्र में होने वाली क्रियाओं का अन्य क्षेत्रों में कार्य करने वाले लोगों के साथ सामंजस्य तथा सम्बंध स्थापित किया जाता है ।

4.2.3 नगरीय एवं ग्रामीण जीवन में अन्तर

ग्रामीण एवं नगरीय जीवन के बीच स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती है क्योंकि जीवन में ग्राम एवं नगर एक सामाजिक जीवन के दो छोर हैं, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । फिर भी ग्रामीण और नगरीय जीवन के बीच कुछ अन्तर पाया जाता है, जो निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

(1) सामाजिक संगठन के आधार पर अन्तर-सामाजिक संगठन के आधार पर ग्रामीण एवं नगरीय जीवन में निम्न भेद किये जा सकते हैं-

(i) परिवार के स्वरूप सम्बंधी अन्तर-गाँवों में परिवार संयुक्त रूप में रहते हैं जबकि नगरों में संयुक्त परिवार प्रणाली बहुत कम देखने को आती है । नगरों में व्यक्ति एकाकी परिवार के रूप में रहता है ।

(ii) विवाह-गाँवों में विवाह को पवित्र एवं धार्मिक संस्कार माना जाता है । गाँवों में विवाह व्यक्तिगत नहीं, बल्कि पारिवारिक विषय है, जबकि नगरों में विवाह एक औपचारिकता है ।

(iii) स्त्रियों की परिस्थिति-गाँवों में स्त्रियाँ आत्मनिर्भर नहीं होती हैं तथा उन्हें अधिक स्वतंत्रता भी प्राप्त नहीं होती है । अशिक्षित होने के कारण अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं होती हैं । जबकि नगरों में स्त्रियाँ शिक्षित एवं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती हैं । स्वावलम्बी होने के कारण नगरों में रहने वाली स्त्रियाँ पुरुषों के मुकाबले में किसी भी क्षेत्र में कम नहीं हैं।

(iv) पड़ोस का महत्व-गाँवों में व्यक्ति अपने पड़ोस के दुख-दर्द एवं खुशी के क्षणों में हिस्सा लेता है तथा पड़ोस के महत्व को विशेष अहमियत देता है, जबकि नगरों में औपचारिकताओं का जाल अधिक घना है । नगरीय जीवन इतना अधिक व्यस्त होता जा रहा है कि पड़ोस के बारे में सोचने की फुर्सत ही नहीं है ।

(v) सामुदायिक भावना-गाँवों में लोगों का रहन-सहन, आचार-विचार इस प्रकार का है कि उसमें सामुदायिक भावना काफी प्रबल है । गाँवों में व्यक्ति के मन में समूह के प्रति त्याग एवं समर्थन के भाव रहते हैं जबकि नगरों में व्यक्ति में सामुदायिक भावना बहुत कम पायी जाती है ।

(vi) जाति में वर्ग-गाँवों में जाति बन्धन अपेक्षाकृत अधिक कठोर होता है जबकि नगरों में जाति बंधन काफी शिथिल है ।

(2) सामाजिक नियंत्रण के आधार पर भेद-सामाजिक नियंत्रण के आधार पर दोनों में भिन्न अन्तर पाया जाता है-

(i) गाँवों में सामाजिक नियंत्रण के साधन प्राथमिक समूह तथा संस्थायें होती हैं, जबकि नगरों में सामाजिक नियंत्रण द्वैतीयक समूह तथा संस्थाओं के द्वारा होता है ।

(ii) गाँवों में परिवार, धर्म तथा प्रथायें सामाजिक नियंत्रण के मामले में इनका अधिक प्रभाव नहीं है।

(iii) गाँवों में सामाजिक नियंत्रण के साधन औपचारिक होते हैं जबकि नगरों में सामाजिक नियंत्रण के साधन काफी औपचारिक होते हैं ।

(iv) गाँवों में सामाजिक नियमों का उल्लंघन करने वालों के लिए दण्ड की वैधानिक व्यवस्था है ।

(v) गाँवों में सामाजिक नियंत्रण सरल है जबकि नगरों में सामाजिक नियंत्रण जटिल है ।

3. सामाजिक सम्बंध के आधार पर भेद-गाँवों में जनसंख्या कम होती है तथा ग्रामवासी सामान्यत: एक ही प्रकार का सामाजिक जीवन व्यतीत करते हैं, अत: गाँववासियों में परस्पर सम्बंध प्राथमिक तथा व्यक्तिगत होता है तथा आपसी सम्बंधों की घनिष्ठता के कारण औपचारिकता का अभाव पाया जाता है। उसके विपरीत नगरों में जनसंख्या का दबाव अपेक्षाकृत अधिक होने से नगरवासी एकदूसरे से

भली-भाँति परिचित नहीं हो पाते हैं । इसके अतिरिक्त नगरों का जीवन बहुत व्यस्त होता है । लोगों के पास एक दूसरे से मिलने के लिए तथा घनिष्ठ सम्बंध कायम करने के लिए समय का भी अभाव रहता है। नगर में लोगों के सामाजिक सम्बंध औपचारिक, द्वैतीयक तथा अव्यक्तिगत होते हैं ।

4. सामाजिक अन्तः क्रिया के आधार पर अन्तर–नगरों तथा गाँवों के बीच अन्तःक्रिया सम्बंधी भिन्नता पाई जाती है जो इस प्रकार है–

(i) गाँवों में नगरों की अपेक्षा सामाजिक सम्बंध बहुत कम होते हैं और जो कुछ होते है वे वैयक्तिक होते हैं जबकि नगरों में सामाजिक सम्बंधों की भरमार होती है जिनमें से अधिकांश सम्बंध अप्रत्यक्ष और निर्वैयक्तिक होते हैं ।

(ii) ग्रामीण जीवन में सहिष्णुता का अभाव पाया जाता है परन्तु नगरीय जीवन में सहिष्णुता अधिक पायी जाती है जिससे वे परिवर्त्तन के साथ अनुकूलन करने में अधिक सक्षम होते हैं ।

(iii) प्रतिस्पर्धा गाँवों में अधिक नहीं पाई जाती है जबकि नगरों में प्रतिस्पर्धा की सामाजिक प्रक्रिया अत्यधिक होती है ।

(iv) ग्रामों में संघर्ष अप्रत्यक्ष रूप में देखने को मिलता है परन्तु नगरों में संघर्ष अधिक तथा अप्रत्यक्ष रूप में देखने को मिलता है ।

(v) गाँवों में एकीकरण की प्रक्रिया धीमी गति से चलती है जबकि नगरों में एकीकरण की प्रक्रिया निरन्तर तीव्र गति से चलती रही है ।

5. आर्थिक जीवन के आधार पर अन्तर–आर्थिक आधार पर ग्रामीण एवं नगरीय जीवन में निम्नलिखित भेद नजर आते हैं–

1. व्यवसाय–ग्रामवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि है जबकि नगर में विविध प्रकार के व्यवसाय पाये जाते हैं जिनसे नगरवासी अपनी रोजी रोटी कमाते हैं ।

2. जीवन स्तर–नगरवासियों का जीवन स्तर उच्च होता है तथा आय में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है जबकि ग्रामवासियों का जीवन स्तर अपेक्षाकृत नीचा होता है तथा आय में अधिक अन्तर नहीं रहता है क्योंकि सभी का व्यवसाय एक ही है, और वह कृषि है ।

3. व्यय–गाँव नगरों की तुलना में कम व्ययशील है, गाँवों में फालतू के खर्च बहुत कम होते हैं अतः व्यक्ति अपनी सीमित आय में ही सुखपूर्वक रह सकता है जबकि नगरों में यह सम्भव नहीं है ।

6. मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक अन्तर–विचारधारा, प्रवृत्ति एवं मानसिकता का सम्बंध मनोविज्ञान से है । नगर एवं ग्रामवासियों की प्रवृत्ति, विचारधारायें एवं मानसिकता में काफी अन्तर पाया जाता है जो निम्न है–

1. ग्रामीण जीवन में निराशावाद की भावना प्रबल होती है जबकि नगरवासी आशावादी होते हैं ।

2. गाँववासी अन्धविश्वासी तथा रूढ़िवादी होते हैं जबकि नगरवासी प्रगतिशील एवं विज्ञान के प्रति आस्था रखने वाले होते हैं ।

3. ग्रामवासी की धर्म के प्रति आस्था रहती है जबकि नगरवासी में धार्मिक आस्था का अभाव पाया जाता है ।

4. गाँव के लोग स्पष्टवक्ता, निष्कपट तथा सत्य-निष्ठ होते हैं जबकि नगरीय जीवन कृत्रिकता पर आधारित होता है । ठगी एवं छलकपट गाँवों की तुलना में नगरों में अधिक होता है । नगरों में लोगों के मन में मैले एवं विचार गन्दे होते हैं और इसका कारण नगरों में अत्यधिक भौतिकवाद का पाया जाना है ।

5. ग्रामीण जीवन में समाजवाद की भावना पायी जाती है जबकि नगरीय जीवन में व्यक्तिवादी भावना पायी जाती है ।

6. ग्रामवासियों की राजनीति में अधिक दिलचस्पी नहीं रहती है जबकि नगरवासियों में राजनीति में बहुत रुचि रहती है । देश की राजनीति में नगर के लोग सक्रिय हिस्सा लेते हैं ।

7. गाँव के लोग भाग्यवादी होते हैं जबकि नगर के लोग भाग्य पर कम भरोसा करते हैं ।

8. गाँव के लोगों में सामाजिक गतिशीलता कम पायी जाती है । इसके विपरीत नगरों में सामाजिक गतिशीलता अधिक पायी जाती है ।

7. पर्यावरण के आधार पर अन्तर—गाँव एवं नगर के पर्यावरण में काफी अन्तर पाया जाता है । इस आधार पर ग्रामीण एवं नगरीय समुदाय में निम्न भेद हैं—

गाँव के लोग प्रकृति के अधिक निकट हैं, प्रकृति की गोद में ही उनका सम्पूर्ण जीवन व्यतीत होता है । अत: प्राकृतिक शक्तियों को देवता मानकर उनकी उपासना करता है तथा उनमें गहन आस्था रखता है जबकि नगरों में प्राकृतिक पर्यावरण का पूर्ण अभाव होता है । नगर-निवासी स्वयं को प्रकृति से श्रे ३ मानता है, उनकी यह धारणा रहती है कि मानव मस्तिष्क की उपज विज्ञान ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है । यही कारण है कि नगर-निवासी प्रकृति को अधिक महत्व न देकर अपनी बुद्धि, योग्यता, खोजों एवं आविष्कारों को अधिक महत्व देता है तथा उन पर आस्था रखता है ।

8. सांस्कृतिक जीवन में अन्तर—गाँव तथा शहर के सांस्कृतिक जीवन में निम्नलिखित भेद हैं—

1. नगरों की अपेक्षा गाँवों की संस्कृति में अधिक स्थायित्व है ।

2. ग्रामीण संस्कृति में परम्परा को विशिष्ट महत्व दिया गया है जबकि नगरीय संस्कृति में परम्परा को अधिक महत्व नहीं दिया गया है ।

9. जनसंख्या सम्बंधी अंतर—गाँव और नगर में जनसंख्या सम्बंधी अन्तर निम्नलिखित है —

1. गाँवों में जनसंख्या कम तथा एक रूप होती है जबकि नगरों में जनसंख्या अधिक तथा अनेक रूप में होती है ।

2. गाँवों में जनसंख्या का विकास असन्तुलित होता है जबकि नगरों में जनसंख्या का समुचित एवं संतुलित विकास होता है ।

3. नगरों की अपेक्षा ग्रामीण जनता कम शिक्षित होती है ।

4. ग्रामीण जनता अधिकारों के प्रति कम सजग होती है जबकि नगरी जनता अधिकारों के प्रति पूर्णतया सचेत रहती है ।

5. ग्रामीण जनसंख्या स्थिर होती है अर्थात् उनमें स्थायित्व का भाव अधिक रहता है जबकि नगरीय जनता गतिशील होती है ।

4.2.4 निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन के निकर्ष के बारे में हम कह सकते हैं कि ग्रामीण केवल उसी समूह को कहा जा सकता है जो प्रकृति पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर हो, जिसका आकार सीमित हो तथा जिसमें सदस्यों के बीच घनिष्ठ और प्राथमिक सम्बंध पाये जाते हैं । दूसरी ओर नगर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक भिन्नताओं से युक्त वह वृहत् समुदाय है जहाँ कृत्रिमता, व्यक्तिवादिता, प्रतिस्पर्द्धा और घनी जनसंख्या के कारण नियंत्रण के औपचारिक साधनों के द्वारा सामाजिक संगठन की स्थापना की जाती है ।

4.3 सारांश

पर्यावरण मनुष्य के जीवन को अत्यधिक प्रभावित करता है । मानव जाति प्रकार के पर्यावरण ग्रामीण और नगर में रहता है । जहाँ मानव का सम्बंध प्रकृति से प्रत्यक्ष और निकट का होता है उसे ग्रामीण कहते

हैं जबकि नगर में मानव का सम्बंध प्रकृति से अप्रत्यक्ष होता है । नगर और ग्रामीण के बीच अन्तर करना बहुत कठिन है । फिर भी हम नगर और ग्रामीण के बीच कुछ आधारों पर अन्तर कर सकते हैं जिसे निम्नलिखित रूप में दर्शाया जा सकता है-

— ग्रामीण में परिवार संयुक्त रूप से रहते हैं जबकि नगरों में संयुक्त परिवार प्रणाली बहुत कम देखने को मिलती है ।

— ग्रामीण में विवाह को पवित्र एवं धार्मिक संस्कार माना जाता है जबकि नगरों में विवाह एक औपचारिकता है ।

— ग्रामीण में स्त्रियाँ आत्मनिर्भर नहीं होती हैं तथा अधिकतर अशिक्षित होती हैं जबकि नगरों में स्त्रियाँ शिक्षित एवं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती हैं ।

— ग्रामीण में सामुदायिक भावना बहुत अधिक होती है जबकि नगरों में व्यक्ति में सामुदायिक भावना बहुत कम पायी जाती है ।

— गाँवों में सामाजिक नियंत्रण के साधन प्राथमिक समूह तथा संस्थायें होती हैं जबकि नगरों में सामाजिक नियंत्रण द्वैतीयक समूह से होता है ।

— ग्रामीण में सामाजिक नियमों का उल्लंघन करने वालों के लिए दण्ड की वैधानिक व्यवस्था नहीं है जबकि नगरों में सामाजिक नियमों का उल्लंघन करनेवालों के लिए दण्ड की वैधानिक व्यवस्था है ।

— ग्रामीण जीवन में सहिष्णुता का अभाव पाया जाता है जबकि नगरीय जीवन में सहिष्णुता अधिक पाई जाती है ।

— ग्रामीणवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि है जबकि नगर में विविध किस्म के व्यवसाय विद्यमान हैं ।

— गाँववासी अन्धविश्वासी तथा रूढ़िवादी होते हैं जबकि नगरवासी प्रगतिशील एवं विज्ञान के प्रति आस्था रखने वाले होते हैं ।

— ग्रामवासी की धर्म के प्रति अधिक आस्था रहती है जबकि नगरवासियों में धार्मिक आस्था का अभाव पाया जाता है ।

— नगरों की अपेक्षा ग्रामीण की संस्कृति में अधिक स्थायित्व है ।

4.4 पाठ में पारिभाषिक शब्द

तात्पर्य, विवेचना, सुरुचि, आत्म निर्भर, गहन कृत्रिमता

4.5 अभ्यास के प्रश्न

4.5.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. **'ग्रामीण क्षेत्र वह है जहाँ पर लोग कृषि उद्योग में लगे रहते हैं । अर्थात् वस्तुओं का प्राथमिक उत्पादन प्रकृति के सहयोग से करते हैं.' यह किसका मत है ?**

   (क) एम० एन० श्रीनिवास
   (ख) एस० सी० दुबे
   (ग) के० एल० शर्मा
   (घ) वाई० सिंह

उत्तर–(क)

4.5.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ग्रामीण का अर्थ क्या है ?

उत्तर–4.2.1 देखें ।

2. नगर से क्या समझते हैं ?

उत्तर–4.2.2 देखें ।

4.5.3 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ग्रामीण से क्या समझते हैं ? ग्रामीण और नगर का अन्तर स्पष्ट करें–

उत्तर–4.2.1 एवं 4.2.3 देखें ।

4.6 प्रस्तावित पाठ

1. ए० आर० देसाई : **रूरल सोस्योलॉजी इन इण्डिया**
2. एम० एन० श्रीवास्तव : **सोसल चेंज इन मॉडर्न इण्डिया**
3. आर० एन० मुखर्जी : **भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र**

❖❖❖

भारतीय जाति प्रथा : अवधारणा और जाति प्रथा में परिवर्त्तन

पाठ-संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 परिचय

5.2 जाति प्रथा की सामान्य अवधारणा

- 5.2.1 जाति प्रथा का अर्थ एवं परिभाषा
- 5.2.2 जाति प्रथा की विशेषता
- 5.2.3 जाति प्रथा में परिवर्त्तन
- 5.2.4 परिवर्त्तन के कारक
- 5.2.5 निष्कर्ष

5.3 सारांश

5.4 पाठ में पारिभाषिक शब्द

5.5 अभ्यास का प्रश्न

- 5.5.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न
- 5.5.2 लघुउत्तरीय प्रश्न
- 5.5.3 दीर्घउत्तरीय प्रश्न

5.6 प्रस्तावित पाठ

5.0 उद्देश्य

इस अध्ययन में हम जाति प्रथा की अवधारणा को देखेंगे । इसके अन्तर्गत हम जाति प्रथा का अर्थ तथा परिभाषा देंगे । फिर जाति प्रथा की क्या विशेषतायें हैं इसकी विवेचना करेंगे । वर्त्तमान में भारतीय जाति प्रथा में आनेवाले परिवर्त्तनों पर प्रकाश डालेंगे । पूरे अध्ययन का निष्कर्ष देंगे । पूरे अध्ययन की रूपरेखा के लिए हम सारांश देंगे ।

5.1 परिचय

भारतीय सामाजिक संस्थाओं में जाति प्रथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । यह ग्रामीण सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार है । यह हिन्दुओं की सामाजिक संगठन की प्रमुख विशेषता रही है जबकि पश्चिमी देशों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार वर्ग रहा है । ए० आर० देसाई का मत है कि जाति भेद गाँवों में

पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन प्रणालियों, उनके निवास स्थानों तथा सांस्कृतिक प्रतिमानों को निश्चित करती है । डा० सक्सेना का मत है कि जाति हिन्दू सामाजिक संरचना का एक प्रमुख आधार रही है, जिससे हिन्दुओं का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन प्रभावित होता रहा है । भूस्वामित्व जाति पर आधारित है । इनके कारणवश प्रशासकीय कार्यों को अधिकांशतः जाति के आधार पर बाँटा गया है ।

5.2 जाति प्रथा की सामान्य अवधारणा

5.2.1 जाति प्रथा का अर्थ एवं परिभाषा

जाति शब्द अंग्रेजी भाषा के कास्ट 'Caste' का हिन्दी अनुवाद है । 'जाति' शब्द की उत्पत्ति स्पेनिश शब्द कास्टा (Casta) से हुआ है जिसका अर्थ है नस्ल, प्रजातीय तत्व अथवा पैतृक गुणों से सम्पूर्ण । परन्तु भारत वर्ष में जाति शब्द का प्रयोग विशेष रूप से एक ऐसे सामूहिक संगठन के लिए किया जाता है जो एकरूपीय है, अतः विवाही, मुख्य निर्देशक तथा विशेष संस्कारों को करने वाला है । जाति प्रथा के सम्बंध में विभिन्न विद्वानों ने अपना विचार दिया है जो निम्नलिखित है-

एच० एच० रिजले ने लिखा कि "जाति परिवारों या परिवारों के समूहों का एक संकलन है जिसका एक सामान्य नाम है और जो एक काल्पनिक पुरुष अथवा देवता से उत्पन्न होने का दावा करता है, एक वंशानुगत व्यवसाय करता है और लोगों की दृष्टि में एकरूपीय समुदाय निर्मित करता है ।"

इ० ए० एच० ब्लण्ट के अनुसार, "जाति एक अन्तर्विवाह वाला वर्ग है या ऐसे समूह का संकलन है, जिसका एक सामान्य नाम होता है जिसकी सदस्यता वंशानुगत होती है, जो अपने सदस्यों के सामाजिक सम्पर्क पर कुछ प्रतिबंध लगाती है, एक सामान्य परम्परागत व्यवसाय को अपनाती है तथा एक सामान्य प्रकृति का दावा करती है और साधारणतया एक सजातीय समुदाय को बनाने वाली समझी जाती है ।"

केतकर ने कहा कि जाति एक सामाजिक समूह है जिसकी दो विशेषताएँ हैं - (i) सदस्यता उन्हीं लोगों तक सीमित होती है जो इस समूह में जन्म लेते हैं, (ii) सदस्यों को एक कठोर सामाजिक नियम द्वारा समूह से बाहर विवाह करने की मनाही होती है ।

एन० के० दत्त के अनुसार, "एक जाति के सदस्य बाहर वैवाहिक सम्बंध नहीं करते हैं । अन्य जातियों के लोगों के साथ खान-पान के सम्बंध में इसी प्रकार का लेकिन कुछ कम कठोर नियंत्रण पाया जाता है । अनेक जातियों में कुछ निश्चित व्यवसाय होते हैं, जातियों में संस्तरणात्मक श्रेणियाँ पाई जाती हैं, ब्राह्मण की सर्वोच्च स्थिति है, मनुष्य की जाति का निर्णय जन्म से होता है । यदि वह नियमों को भंग करने के कारण जाति से बाहर न निकाल दिया गया हो तो एक जाति से दूसरी जाति में परिवर्त्तन सम्भव नहीं ।"

5.2.2 जाति प्रथा की विशेषता

डा० घुरिये, एन० के० दत्ता आदि विद्वानों ने जाति की परिभाषा के आधार पर उसकी कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया है । जाति की उन विशेषताओं की चर्चा हम निम्न रूप में कर सकते हैं :-

(1) समाज का खण्डात्मक विभाजन (Segmental Division of Society)—जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज को विभिन्न खण्डों में विभाजित कर दिया है और प्रत्येक खण्ड के सदस्यों की स्थिति, पद तथा कार्य निश्चित है । व्यक्ति की निष्ठा एवं श्रद्धा समुदाय के प्रति न होकर अपनी ही जाति तक सीमित होती है । जाति के नैतिक नियमों का पालन करना व्यक्ति अपना कर्त्तव्य समझता है । ऐसा न करने पर जाति पंचायत उसे दण्ड देती है ।

(2) संस्तरण (Heirarchy)—संस्तरण जातीय समाज का प्रमुख विशेषण है । पूर्ण भारत में जातियों के सामाजिक संगठन में संस्तरण पाया जाता है जिसमें ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च होता है । इससे स्पष्ट होता है कि जातियों की सामाजिक प्रतिष्ठा एक जैसी नहीं होती है अपितु उसमें ऊँच-नीच की भावना पाई जाती है ।

(3) भोजन एवं सामाजिक सहवास पर प्रतिबंध (Restrictions of Feeding and Social Intercourse)—जाति व्यवस्था में भोजन या पेय दूसरे जाति द्वारा स्वीकार करने के लिए कुछ निश्चित नियम होते हैं । प्रत्येक जाति के ऐसे नियम हैं जो यह बताते हैं कि इसके सदस्य किस जाति के यहाँ कच्चा, पक्का तथा फलाहारी भोजन कर सकते हैं, किसके हाथ का बना भोजन और किस के यहाँ का पानी पी सकते हैं । किसके साथ बैठकर हुक्का, बीड़ी पी जा सकती है । एक ब्राह्मण डाक्टर इस सिद्धान्त के अन्तर्गत किसी निम्न जाति के बीमार व्यक्ति के हाथ की नाड़ी छू जाने पर भी दूषित हो जाता है ।

(4) व्यवसाय के चुनाव पर प्रतिवंध (Lock of Undestricted Choice of occupation)—सम्पूर्ण जाति व्यवस्था व्यवसायों पर आधारित है । प्राय: प्रत्येक जाति का एक परम्परागत व्यवसाय होता है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होता रहता है । प्रत्येक जाति यह चाहती है कि उसके सदस्य निर्धारित जातिगत व्यवसाय ही करें । अन्य जातियों के लोग भी एक व्यक्ति को अपना जातीय व्यवसाय बदलने से रोकते हैं ।

(5) जाति जन्म से निर्धारित होती है—एक व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है, जीवन-पर्यन्त उसी का सदस्य बना रहता है । अपने जीवन काल में वह जाति बदल नहीं सकता है ।

(6) विवाह का प्रतिबंध (Restriction on marriage)—जाति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि प्रत्येक जाति अपनी ही जाति या उपजाति में विवाह करती है । अन्य जातियों के साथ विवाह सम्बंध स्थापित करने पर प्रतिबंध है । जाति या उपजाति के बाहर विवाह करनेवाले को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है । इस प्रकार जाति अन्त:-विवाही जातीय प्रथा का सार तत्व है ।

5.2.3 जाति प्रथा में परिवर्त्तन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जाति प्रथा की सम्पूर्ण व्यवस्था में तेजी के साथ परिवर्त्तन देखने को मिल रहा है । जातीय दूरी काफी सीमा तक कम हो गई है और अछूतों की स्थिति अब पहले जैसी नहीं रही । साथ-साथ कई स्थानों पर अन्तरजातीय विवाह को भी प्रोत्साहन मिल रहा है । जाति व्यवस्था के अन्तर्गत हुए परिवर्त्तन को हम निम्न रूप में देख सकते हैं ।

1. ब्राह्मणों की स्थिति में गिरावट—जाति प्रथा की अन्तर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में ब्राह्मणों का एकाधिकार एवं प्रमुख रहा है । किन्तु वर्त्तमान में व्यक्तिगत गुणों एवं धन का महत्व बढ़ जाने से निम्न जातियों में व्यक्ति भी शिक्षा ग्रहण कर, धन संचय कर एवं चुनाव में विजय प्राप्त कर अपनी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति को ऊँचा उठाने में सफल हुए हैं ।

2. जातीय संस्तरण में परिवर्त्तन—जाति प्रथा में विभिन्न जातियों का एक संस्तरण पाया जाता है । प्रत्येक जाति यह जानती है कि कौन-कौन सी जातियाँ उससे, ऊँची और नीची हैं । सभी जातियाँ इस संस्तरण को स्वीकार करती रही हैं, परन्तु वर्त्तमान में इस संस्तरण में परिवर्त्तन आया है और निम्न जातियाँ अपनी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार करके जातीय संस्तरण में ऊँचा उठने का प्रयास कर रही हैं ।

3. पेशे के चुनाव में स्वतंत्रता—परम्परागत जाति प्रथा में प्रत्येक जाति का एक निश्चित व्यवसाय होता था जिसे बदला नहीं जा सकता था । योग्यता अथवा रुचि से उसका कोई सम्बंध नहीं था । उच्च जाति के लोग आवश्यकता होते हुए भी निम्न जाति के पेशों को नहीं अपनाते थे । लेकिन आज इस स्थिति में परिवर्त्तन आ गया है । आवश्यकता के अनुसार अब लोगों के पेशों में परिवर्त्तन आ रहा है जो सामाजिक परिवर्त्तन का मार्ग प्रशस्त कर रहा है । वर्त्तमान काल में सुलभ शौचालय संस्थान में उच्च जाति के लोग भी कार्यरत हैं जबकि परम्परागत रूप से यह मेहतरों का कार्य समझा जाता था । इसी प्रकार बाटा जूता कम्पनी में ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं अन्य दूसरी जातियों के लोग कार्यरत हैं जबकि पहले यह चमारों का कार्य समझा जाता था । इसके अतिरिक्त, वर्त्तमान में कई नये व्यवसाय जैसे--डॉक्टरी, इन्जीनियरिंग, वकालत एवं

सरकार के विभिन्न विभागों में सेवा कार्य आदि खुले हैं जिसमें सभी जातियों के व्यक्ति कार्य करते हैं । इस प्रकार आज जाति अनेक व्यवसायों में तथा एक व्यवसाय में अनेक जातियाँ लगी हुई हैं ।

4. भोजन सम्बंधी प्रतिबंधों में परिवर्त्तन–परम्परागत जाति प्रथा में खान-पान सम्बंधी अनेक निषेध थे । शाकाहारी, मांसाहारी, कच्चे एवं पक्के भोजन के बारे में पवित्रता और अपवित्रता की धारणा प्रचलित थी । किन्तु अब कुछ ब्राह्मण भी माँसाहारी भोजन करने लगे हैं । नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण होटल और क्लब खुले हैं, जिनमें सभी जाति के लोग एक साथ भोजन करते हैं । धातु एवं मिट्टी के बर्त्तनों को लेकर पवित्रता एवं अपवित्रता की जो धारणा थी वह समाप्त हुई है । अब उच्च जातियाँ निम्न जातियों के यहाँ भोजन एवं पानी ग्रहण करने लगी हैं ।

5. जन्म के महत्व में कमी–जाति व्यवस्था में जन्म का बहुत महत्व था । ब्राह्मण के परिवार में जन्म लेने वाला इसलिए श्रेष्ठ समझा जाता था कि उसने ऊँची जाति में जन्म लिया है । किन्तु वर्त्तमान में जन्म के बजाए व्यक्ति के कर्म एवं गुणों का महत्व बढ़ा है । आज योग्य, कुशल एवं साहसी व्यक्ति को श्रेष्ठ माना जाता है, चाहे वह निम्न जाति का ही क्यों न हो ।

6. अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन–जातीय व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य रक्त की शुद्धता को बनाये रखना होता है बल्कि सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए अन्तर्जातीय विवाह सामाजिक रूप से अमान्य थे तथा इस नियम का उल्लंघन एक अक्षम्य अपराध समझा जाता था । लेकिन आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्त्तन होने के साथ ही भारत में पश्चिम के प्रभाव के कारण अन्तर्जातीय विवाह होने शुरू हुए । यद्यपि इस तरह के विवाह अभी सामान्य रूप में नहीं हो रहे हैं ।

7. अस्पृश्य जातियों के अधिकारों में वृद्धि–परम्परागत जाति व्यवस्था में शुद्ध एवं अस्पृश्य जातियों को अनेक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों से वंचित किया गया था । किन्तु समाज सुधारकों एवं सरकारी प्रयत्नों के कारण आज उन्हें उच्च जातियों के समकक्ष ही सभी अधिकारी एवं सुविधाएँ प्राप्त हैं । उन्हें आर्थिक एवं राजनीतिक संरक्षण प्रदान किया गया है । कानूनी रूप में अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है ।

8. सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि–जातिगत गतिशीलता जाति व्यवस्था की विशेषता नहीं रही है । यह भी सामाजिक परिवर्त्तन में बाधा का एक कारण था । लेकिन अब विभिन्न कारकों के प्रभाव के कारण जाति के अन्तर्गत भी गतिशीलता पायी जा रही है ।

5.2.4 जाति व्यवस्था में परिवर्त्तन के कारक

वर्त्तमान समय में जाति व्यवस्था में अनेक परिवर्त्तन हुए हैं और उसका परम्परात्मक रूप बदल गया है । जाति व्यवस्था में परिवर्त्तन लाने वाले कारकों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है–

1. पाश्चात्य शिक्षा एवं सभ्यता–अंग्रेजों के आने के पहले भारत में धार्मिक शिक्षा का प्रचलन था, जिसमें केवल ब्राह्मणों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था, शेष जातियों को शिक्षा से वंचित रखा गया था । वे अपने जातीय व्यवसाय की शिक्षा परिवारजनों से घर में ही प्राप्त करते थे । अंग्रेजों ने भारत में धर्म-निरपेक्ष एवं सार्वभौमिक शिक्षा प्रारम्भ की । इस शिक्षा ने भारतवासियों को रूढ़िवादिता एवं संकीर्णता से मुक्ति दिलायी एवं लोगों में स्वतंत्रता, समानता तथा भाईचारे की भावना पैदा की । वैज्ञानिक शिक्षा ने लोगों में तार्किक दृष्टिकोण का विकास किया । फलस्वरूप जाति व्यवस्था निर्बल हुई । पश्चिमी सभ्यता का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव पड़ा । पश्चिम में व्यक्तिवाद, उदारवाद, भौतिकवाद एवं उपयोगितावाद ने यहाँ नवीन विचारों को बढ़ावा दिया । धन एवं व्यक्ति के गुणों का महत्व बढ़ा । प्रेम विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह के कारण जातीय बंधन शिथिल हुआ एवं खान-पान एवं छुआछूत में कठोरता कम हुई ।

2. औद्योगीकरण एवं नगरीकरण–औद्योगीकरण के कारण भारत में बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हुए जिसमें सभी जातियों के लोग साथ काम करने लगे । इससे पूर्व प्रत्येक जाति का अलग-अलग व्यवसाय था । एक साथ काम करने से उनमें पारस्परिक समझ बढ़ी तथा जातीय भेद-भाव दूर हुए ।

3. धन का बढ़ता महत्व—वर्त्तमान समय में जन्म के स्थान पर व्यक्तिगत गुणों एवं धन का महत्व बढ़ा है । व्यक्ति का मूल्यांकन अब जाति के आधार पर नहीं बल्कि उसकी सम्पत्ति एवं गुणों के आधार पर होने लगा ।

4. स्वतंत्रता आन्दोलन—अंग्रेजों से मुक्ति पाने के लिए स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने सभी देशवासियों को जातीय भेद-भाव भुलाकर, आन्दोलन में भाग लेने का आह्वान किया जिसके फलस्वरूप विभिन्न प्रान्तों, धर्मों, जातियों एवं भाषाओं से सम्बंधित लोगों ने एक झण्डे के नीचे एकत्रित होकर सत्याग्रह एवं आन्दोलन किये । सभी जातियों के लोग जेलों में साथ-साथ रहते, खाते-पीते एवं उठते-बैठते थे । उससे भी जातीय भेदभाव समाप्त हुआ ।

5. प्रजातंत्र की स्थापना—स्वतंत्रता के बाद देश में प्रजातंत्र की स्थापना की गई । नवीन संविधान में रंग, लिंग, जन्म, धर्म आदि के आधार पर किसी के प्रति भेद-भाव न बरतने का उल्लेख किया गया है । साथ ही सभी देशवासियों को समान मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं । प्रजातांत्रिक विचारों के कारण भी जाति-व्यवस्था निर्बल हुई ।

6. धार्मिक आन्दोलन—ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन तथा नानक, नामदेव, तुकाराम, कबीर आदि सन्तों ने जाति के दोषों की कटु आलोचना की और जातीय छुआछूत एवं ऊँच-नीच को समाप्त करने में योग दिया ।

7. यातायात एवं संचार साधनों में उन्नति—यातायात एवं संचार के नवीन साधनों के कारण लोगों में गतिशीलता बढ़ी, विभिन्न प्रान्तों, धर्मों एवं जातियों के लोग रेल, बस एवं वायुयान में सहयात्री बन यात्रा करने लगे । इससे उनमें सम्पर्क बढ़ा, समानता के भाव पनपे, छुआछूत कम हुई और खान-पान के नियमों में शिथिलता आयी ।

8. स्त्री-शिक्षा का प्रसार—स्त्रियों में शिक्षा के अभाव ने जातीय नियमों के पालन में योग दिया । किन्तु जब स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार हुआ तो उन्होंने जातीय बंधन को तोड़ा और जाति प्रथा के कारण उनको जिन यातनाओं को बर्दाशत करना पड़ रहा था उनके प्रति विद्रोह किया । उन्होंने भी जाति से सम्बंधित विवाह एवं खान-पान के नियमों को चुनौती दी । नवीन शिक्षा प्राप्त स्त्रियाँ जातीय बंधनों को स्वीकार नहीं करती हैं ।

9. संयुक्त परिवारों का विघटन—संयुक्त परिवारों के विघटन ने भी जाति प्रथा को प्रभावित किया है । संयुक्त परिवारों में जातीय नियमों का अधिक पालन-पोषण होता था । एकाकी परिवारों की स्थापना के कारण जाति का पोषण करने वाले विचारों में कमी आयी है ।

10. जजमानी प्रथा की समाप्ति—जजमानी प्रथा में एक जाति दूसरी जाति की सेवा करती थी उसमें पारस्परिक निर्भरता थी । किन्तु जब औद्योगीकरण हुआ एवं नवीन व्यवस्थायों की स्थापना हुई तो जजमानी प्रथा टूटी, लोक अपने जातीय व्यवसाय के स्थान पर अन्य व्यवसाय भी करने लगे । इससे जातीय व्यवसाय सम्बंधी बाध्यता समाप्त हुई और जाति व्यवस्था का आर्थिक आधार समाप्त हुआ ।

11. नवीन कानूनों का प्रभाव—अंग्रेजी शासनकाल से ही ऐसे कानून बने, जो जाति व्यवस्था के विरुद्ध थे । हिन्दू विवाह वैधकरण अधिनियम, विशेष विवाह अधिनियम, आदि विभिन्न धर्मों एवं जातियों के स्त्री-पुरुषों के विवाह को वैध घोषित करता है । अस्पृश्यता अपराध अधिनियम द्वारा छुआछूत को समाप्त कर दिया गया । संविधान में भारत को एक धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया । धर्म का महत्व घटने के साथ जाति व्यवस्था का महत्व घटा ।

5.2.5 निष्कर्ष

प्रत्येक समाज की सामाजिक संरचना विभिन्न स्तरों में विभाजित होती है, जिनकी प्रतिष्ठा में काफी अन्तर पाया जाता है । सामान्यतः भारत जातियों एवं सम्प्रदायों की परम्परात्मक स्थली मानी जाती है । यहाँ के मुसलमान और ईसाई में भी जाति व्यवस्था पायी जाती है ।

जाति एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसकी सदस्यता जन्म पर आधारित होती है और जो अपने सदस्यों पर खान-पान, विवाह, पेशा और सामाजिक सहवास सम्बंधी अनेक प्रतिबंध लागू करता है । भारत में जाति का स्वरूप इतनी विभिन्नता लिए हुए है कि इसकी कोई भी सर्वमान्य परिभाषा करना कठिन है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में नगरीकरण और औद्योगीकरण काफी तेजी से हुआ है । गाँवों से लोग नगर में आने और औद्योगिक क्षेत्रों में कार्य करने के कारण जाति प्रथा के नियमों एवं निषेधों में काफी परिवर्त्तन आये हैं । दूसरी ओर शिक्षा के प्रसार से जाति के नियमों में परिवर्त्तन होने लगे हैं । वर्त्तमान में कर्म और गुण का महत्व बढ़ जाने के कारण जन्म के आधार पर जाति का महत्व कम हुआ है ।

5.3 सारांश

जाति प्रथा ग्रामीण सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार है । यह हिन्दुओं के सामाजिक संगठन की प्रमुख विशेषता रही है । जाति अंग्रेजी शब्द कास्ट का हिन्दी अनुवाद है जो कि स्पेनिश भाषा के कास्टा (Casta) से लिया गया है जिसका अर्थ प्रजातीय होता है ।

जाति प्रथा के सम्बंध में अनेक विद्वानों ने अपने विचार दिये हैं, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में सामाजिक स्तरीकरण का प्रमुख आधार जाति प्रथा है । जाति ही व्यक्ति का व्यवसाय, सामाजिक स्तर, प्राप्त अवसर तथा अन्य निर्योग्यतायें निर्धारित करती है । जाति के अन्तर गृहस्थ तथा सामाजिक जीवन में भी भिन्नता लाते हैं तथा मकानों के प्रकार, सांस्कृतिक जीवन तथा भू-स्वामित्व भी कुछ अंश तक जाति से सम्बंधित किया जा सकता है ।

गाँव में रहने वाली विभिन्न जातियाँ आर्थिक सम्बंधों द्वारा एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं । सामान्यतया कृषक जातियाँ गाँव में अधिक पाई जाती हैं । जजमानी व्यवस्था जिसमें विभिनन जातियाँ अपनी सेवाओं का विनिमय करती हैं, यह गाँव में कुछ वर्ष पहले तक प्रमुख रूप से पाई जाती थी, परन्तु आज लगभग समाप्त सी हो गई है ।

गाँव एक राजनैतिक तथा सामाजिक इकाई है । पूरा ग्रामीण समुदाय संस्तरणात्मक समूहों में विभाजित होता है जिनके अपने अधिकार, कर्त्तव्य तथा योग्यतायें अथवा निर्योग्यतायें होती हैं । उच्च जाति के पास सत्ता तथा अधिक अधिकार होता है । जातियाँ परस्पर आश्रित हैं ।

जातीय स्वरूप में परिवर्त्तन अवश्य हो रहे हैं परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि जाति भविष्य में पूरी तरह से समाप्त हो जायेगी । जाति में हो रहे विभिन्न महत्वपूर्ण परिवर्त्तन निम्नलिखित हैं–

(i) विभिन्न जातियों में जातीय दूरी कम हो गई है ।

(ii) अन्तर्जातीय विवाहों को नगरों तथा कुछ सीमा तक गाँवों में भी मान्यता मिलती जा रही है ।

(iii) जाति के परम्परागत व्यवसायों में परिवर्त्तन हुआ है अर्थात् व्यावसायिंक विजातीयता बढ़ी है ।

(iv) खान-पान तथा सामाजिक सहवास पर लगे हुए प्रतिबंध धीरे-धीरे समाप्त होने लगे हैं ।

(v) निम्न जातियाँ अब असुरक्षित नहीं हैं, क्योंकि उन्हें अनेक विशेषाधिकार तथा सुविधायें मिल गई हैं ।

(vi) उच्च जातियों ने शिक्षा तथा अन्य आधुनिक प्रक्रियाओं का अधिक लाभ उठाया है तथा वह अधिक परिवर्तित हुई है । प्रत्येक जाति में परिवर्त्तन एक समान नहीं हुए हैं ।

(vii) जातीय पंचायतों की महत्ता कम हो गई है ।

(viii) आर्थिक तथा राजनैतिक सुविधाओं के कारण जातीय संस्तरण में पद मूलक तथा संरचनात्मक दोनों तरह के परिवर्त्तन हुए हैं ।

(ix) विभिन्न जातियों में पाई जाने वाली सेवाओं के आदान-प्रदान की प्रक्रिया जिसे जजमानी प्रथा कहा जाता है, समाप्त हो गई है ।

(x) पवित्रता-अपवित्रता की भावना जिस पर सम्पूर्ण जाति व्यवस्था आधारित है, अब प्राय: समाप्त होती जा रही है ।

5.4 पाठ में पारिभाषिक शब्द

सहवास, प्रतिबंध, हस्तान्तरित, संस्तरण, पवित्रता

5.5 अभ्यास के प्रश्न

5.5.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नलिखित में प्रथा में परिवर्त्तन आए हैं ।

(क) ब्राह्मणों की स्थिति में

(ख) जातीय संस्तरण में

(ग) पेशा के चुनाव में

(घ) उपर्युक्त तीनों

उत्तर–(घ)

5.5.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. जाति प्रथा क्या है ? परिभाषा दें ।

उत्तर–5.2.1 देखें ।

2. जाति प्रथा की विशेषताओं की व्याख्या करें ।

उत्तर–5.2.2 देखें ।

5.5.3 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. जाति प्रथा से क्या समझते हैं ? उसकी विशेषताओं की विवेचना करें ।

उत्तर–5.2.1 एवं 5.2.2 देखें ।

2. जाति प्रथा क्या है ? इसमें होने वाले परिवर्त्तनों की व्याख्या करें ।

उत्तर–5.2.1 एवं 5.2.3 देखें ।

5.6 प्रस्तावित पाठ

1. आन्द्रे विस्ले : **कास्ट, क्लास एण्ड पावर**

2. आर० एन० मुखर्जी : **ग्रामीण समाज शास्त्र**

❖❖❖